राजिया रा सोरठा

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

प्रकाशक :
राजस्थानी ग्रन्थागार
सोजती गेट के बाहर
जोधपुर

संस्करण : 1989

मूल्य : दस रुपये

मुद्रक :
हाउस
[illegible] गेट के अन्दर

अनुक्रम

प्रस्तावना

राजस्थानी साहित्य अपनी विविधता, विपुलता एवं विशिष्टता के लिए विख्यात है। इसमें जीवन और जगत की समस्त छवियों का सम्यक् एवं सरस चित्रण मिलता है। मानव-जीवन में विद्या की अनन्त महिमा है और 'विद्या ददाति विनयम्' सूक्ति के अनुसार विनय मानवता का शृंगार है। 'वि+नय' अर्थात् 'विशिष्ट नीति' ही मनुष्य को सफलता के सोपान का भान कराती है। यही कारण है कि राजस्थानी साहित्यकारों ने अपने विविध विषयक प्रबन्ध और मुक्तक काव्यों के मध्य यथास्थान नीति-वाक्यों का निदर्शन किया है।

राजस्थान का प्राचीन नाम मरुदेश था और यहाँ की भाषा थी मरुभाषा। डिंगल, मरुवाणी, मारवाड़ी, राजस्थानी प्रभृति मरुभाषा के ही पर्यायवाची शब्द है। श्री उदयराज उज्ज्वल कृत यह सोरठा उल्लेखनीय है—

डिंगळ मरुवांणीह, वजै मारवाडी वळै ।
मरुभाषा जांणीह, राजस्थानी एक है ।।

बात चाहे जंग की हो या राग-रंग की, प्रश्न प्रतिशोध का हो चाहे आत्मबोध का, चित्रण प्रकृति का हो या संस्कृति का, कथन प्रीति का हो चाहे नीति का, मनुष्य का हृदय तो अपनी मातृभाषा में ही बोलता है। यही कारण है कि राजस्थान में डिंगल, पिंगल एवं ब्रजभाषा तीनों में ही विपुल साहित्य-सृजन हुआ, किन्तु डिंगल (मरुभाषा का ही परवर्ती नाम) भाषा में गुण एवं परिमाण दोनों दृष्टियों से जितना बहुआयामी काव्य रचा गया, उसकी समानता अन्यत्र दुर्लभ है। शक्ति, भक्ति एवं अनुरक्ति की त्रिवेणी के संगम मरु-महार्णव की उदात्त ऊर्मियों के तले अनेकानेक रुचिर रत्न भव्य भावमयी आभा से आलोकित दिखाई पड़ते हैं। गर-(प्रशस्ति) काव्य, विसर (निन्दात्मक) काव्य, रंग-काव्य, व्यंग्य काव्य, ऐतिहासिक काव्य, राष्ट्रीय काव्य,

रमणु-काव्य, वर्णक काव्य, रीति-काव्य और नीति-काव्य सबकी अपनी पृथक् पहचान है।

राजस्थानी साहित्य में जितनी काव्यधाराएँ एवं काव्य-प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं, उतनी अन्य किसी भारतीय भाषा के साहित्य में शायद ही मिलें। यहाँ के साहित्यकारों ने अपनी सारग्राहिणी प्रवृत्ति के द्वारा प्राचीन भारतीय भाषाओं के साहित्य के श्रेष्ठ अंशों को आत्मसात् कर अपनी मौलिक प्रतिभा से उन्हें उत्तरोत्तर विकास एवं प्रगति प्रदान की। यहाँ के जीवन की समस्त मान्यताओं का सम्यक् निदर्शन नीति-साहित्य में सन्निहित है।

नीति-वचनों को काव्य के कमनीय कलेवर में प्रस्तुत करते ही उसमें आकर्षण बढ़ जाता है। सहृदय व्यक्ति के लिए तो कविता सर्वाधिक प्रिय पदार्थ रही है। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम) ने 'भाषा-भूषण' ग्रन्थ में सार अलंकार का उदाहरण देते हुए ठीक ही कहा है—

एक एक तें सरस जहँ, अलंकार तहँ सार।
मधु सों मधुरी है सुधा, कविता मधुर अपार॥

वस्तुतः नीति में मानव-मन की प्रीति, भीति, रीति और गीति सबकी सहज प्रतीति होती है। उसमें हमारे आचार-विचार, प्रकृति-संस्कृति, राग-विराग, स्वार्थ-परमार्थ, आस्था-अनास्था, विगत-आगत, संवेदन-निवेदन, दृश्य-अदृश्य, कहनी-रहनी, वंदन-निन्दन, मर्म-धर्म, हर्ष-अमर्ष, सबका आदर्शोन्मुख यथार्थ के दृष्टिकोण से चित्रांकन होता है। धर्म-कर्म, विधि-अविधि, सत्-असत्, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, सब का निर्णय नीति के आधार पर ही होता है। नीति के अभाव में शिक्षा मात्र साक्षरता रह जाती है।

संस्कृत साहित्य की विश्व-वंद्य ख्याति के पीछे उसकी नीतिसम्मत परम्परा का प्राधान्य प्रमुख कारण है। राजस्थानी भाषा और साहित्य दोनों में संस्कृत का प्रचुर प्रभाव लक्षित होता है। राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति उत्तरकालीन अपभ्रंश से हुई, जिसे गौर्जर अपभ्रंश (या मरुगुर्जर अपभ्रंश) भी कहा जाता है। इस अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत होने के कारण उसमें संस्कृत का प्रभाव स्वाभाविक है। इस प्रकार संस्कृत और राजस्थानी अर्थात् सुरवाणी

और मरुवाणी में पारस्परिक प्रगाढ़ सम्बन्ध पुरातन काल से अद्यतन चला आ रहा है। इन दोनों भाषाओं में नीति-काव्य का विपुल कोष विद्यमान है।

नीति-काव्य के क्षेत्र में संस्कृत के पश्चात् राजस्थानी का स्थान सर्वोच्च है। राजस्थानी कवियों ने एक ओर जहाँ संस्कृत के सुभाषितों का राजस्थानी में पद्यानुवाद किया, तो दूसरी ओर स्वतन्त्र रूप में नीति-काव्य का प्रचुर प्रणयन किया। राजस्थान की रेत में रत्न तो कम किन्तु नर-रत्न अधिक उत्पन्न हुए। यहाँ की आन, बान, शान एवं बलिदान तो विश्व-विश्रुत है। शौर्य एवं औदार्य का सम्मिश्र रूप यहाँ के इतिहास की महती विशेषता रही है। जहाँ प्राण देकर प्रण रखा हो, सतीत्व की रक्षार्थ जौहर हुए हों, दानवीरों की वदान्य परम्परा रही हो, बोल और बाप को एक माना हो, पारिवारिक सम्बन्धों की पवित्रता और पारस्परिक प्रेम में सर्वस्व न्यौछावर करने की पुनीत प्रथा रही हो, वहाँ मर्यादा का मण्डन एवं पाखण्ड का खण्डन तो स्वतः प्रिय विषय बन जाते हैं।

मनुष्य के चरित्र-निर्माण के लिए आध्यात्मिक चिन्तन की महती आवश्यकता होती है। क्षणभंगुर जीवन को चिरस्थायी करने के लिए कीर्तिर्यस्य स. जीवितम्, सूत्र को हृदयंगम करना आवश्यक है। जीवन रूपी वाटिका की रखवाली प्रतिपल करनी पड़ती है, अतः नीतिपरायणता मनुष्य का प्रथम धर्म है। 'धर्मोरक्षति रक्षितः' अथवा 'जो दृढ़ राखै धर्म को, ताहि राखै करतार' जैसी उक्तियों का यही आशय है।

भर्तृहरि के नीति-शतक में धीर पुरुषों की श्रेष्ठता सिद्ध करने के प्रसंग में कहा है, कि चाहे नीति-निपुण व्यक्ति निन्दा करे अथवा प्रशंसा, लक्ष्मी आए अथवा चली जाए, मृत्यु आज हो अथवा युगों के बाद, किन्तु धीर व्यक्ति न्याय-पथ से कभी एक कदम भी विचलित नहीं होते। यथा—

> निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु
> लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
> न्यायात्पथः पथ प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

न्याय की इस महत्ता का निदर्शन मुख्यतः नीति-साहित्य ही करेगा। जहाँ अन्तर्विरोध और दुविधा की स्थिति होती, वहाँ आप्तवचन ही निर्णायक होते। न्याय में निष्पक्षता अनिवार्य तत्त्व है। राजस्थानी का यह दोहा उल्लेखनीय है—

धन गोइ नह रहै धणी, भड़ सो (इ) जुद्ध अभीत।
न्याय धणां नह नीपजै, रसा अनादी रीत॥

'साहित्य' शब्द में भी नीतिपरक भाव विद्यमान है। 'हितेन सह वर्तते इति सहितम्, सहितस्य भाव साहित्यम्' इस प्रसिद्ध कथन के अतिरिक्त एक अन्य परिभाषा 'स+अहि+त्य' का संधि रूप 'साहित्य' है। इस दृष्टि से सत्य के मध्य अहि रूपी विषैले तत्त्व को रूपान्तरित कर उसे हितकारी बनाने की प्रक्रिया का नाम ही साहित्य है। दूसरे शब्दों में, जीवन में जो विषय तत्त्व है, उसे अमृतमय बनाने की क्षमता जिसमें हो, वही साहित्य है। नीति का भी उद्देश्य यही है कि जीवन में सरसता एवं सुव्यवस्था बनी रहे, वहाँ पर ग्राह्य है। नीति-वाक्यों में व्याख्यायित जीवन का सार तत्त्व मनुष्य सहज ही स्वीकार लेता है, जिस प्रकार मधु-लेपित कटु औषधि को शिशु सहज ही गले उतार लेता है। इसीलिए संसार रूपी विष-वृक्ष के दो फलों अमृतोपम कहे गये हैं— एक तो सुभाषित एवं दूसरा सत्संग। यथा—

ससारे विष वृक्षस्य द्वे फलेऽमृतोपमे।
सुभाषितं च सुस्वादु संगतिः सुजने जने॥

राजस्थानी नीति-काव्य के विशाल कोष में विविध छन्दों में रचित अनेकानेक अनुभवसिद्ध उक्तियाँ एवं सूक्तियाँ संगृहीत हैं। डिंगल-गीत, छप्पय, झमाल, नीसाणी, कुण्डलिया, दूहा, सोरठा आदि छन्दों में अपरिमित नीति-काव्य उपलब्ध है। यों तो शायद ही कोई ऐसा ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य हो, जिसमें यथाप्रसंग नीति-निरूपण न हुआ हो, किन्तु 18 वीं शताब्दी से राजस्थानी साहित्य में नीति-तत्त्व रूपी नगीनों का नूर विशेष रूप से दीप्तिमान होने लगा। सोरठों में तो नीति-काव्य गुण एवं मात्रा दोनों दृष्टियों से भरपूर है ही, किन्तु राजस्थानी के अन्य लोकप्रिय छन्दों में भी पर्याप्त सामग्री

तन कनक घणो श्रोतावतां, विमळ तेज रंग विस्तरै।
एतां जिम सोभ उदल्ल री, करतां श्रवगुण गुण करै।।

(मयाराम रतनू, इटारड़ा)

झमाल्—(इसमें प्रथम दो पंक्तियाँ दोहे की (13, मात्राएँ एवं अन्त में गुरु-लघु से तुकान्त) तथा आगे की चार पंक्तियाँ चन्द्रायण की होती हैं जिसकी प्रत्येक पंक्ति में 21 मात्राएँ और 11, 10 पर क्रमशः यति होती है। दोहे के चौथे चरण की पुनरावृत्ति चन्द्रायणा के प्रथम चरण के रूप में होती है।)

धरा सदा नर वेधनी, चाळा नित चाहंत।
भिड़े कटावे भाइयां वळ पितु पूत विढंत।
वळ पितु पूत विढंत, पियारी राज कज।
कीधौ गोत कदन्न, अरज्जन चाप सज।
आगे दांणव देव, किता ही आहुड़े।
ले परब्रम अवतार, धरा कारण लड़े।।

(सबलजी सांदू, सिहू)

नीसाणी—यह डिंगल का एक ऐसा छन्द है, जिसकी सभी पंक्तियां मे तुकान्त एक जैसा होता है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में 23 मात्राएँ और 13, 10 पर क्रमशः यति होती है। इसके दो भेद विशेष लोकप्रिय है। शुद्ध नीसाणी और गरवत नीसाणी। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि शुद्ध नीसाणी के अन्त में दो गुरु (ऽऽ) और गरवत नीसाणी के अन्त में दो लघु (।।) से तुकान्त का क्रम चलता है। दोनों के उदाहरण रूपी कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं—

(शुद्ध नीसांणी)

किस ही का बिन जांणिये, विसवास न कीजे।
जवरां विणज न कीजिये, ना जबरां लीजे।
भांग सराब अफीम का, को विसन न कीजे।
दुसमण की सौ वीणती, चित एक न दीजे।

ग्रांटा बदळा ग्रापरा, पुळ ग्रायां लीजे।
जे ग्रावै पुळ ग्रापरी, तो ढील न कीजे।
रंडी भंडी दूर रह, रांमत मत रीजे।
पहरे भूपण पारका, सिणगार न कीजे।

(जालजी रतनू, घड़ोई)

(गरयत नीसाणी)

ग्राथ खतै घर एकलो, मत वाट वहाए।
मन मैला चख मंजरा, जिण घर मत जाए।
ग्रोछी संगत ग्रांण के, मत स्यांन गमाए।
बैठ सभा विच बोलणो, सब हूंत सुहाए।
ग्राप तणं वित ग्रोर कूं, मत भूल भळाए।
कँवर किसी भोपाळ का, मत तेड़ रमाए।
नां को ठगणा ग्रोर कूं, नह ग्राप ठगाए।
घड़िया घाट भंगाय के, मत ग्रोर घड़ाए॥

(सालूजी कविया, बिराई)

कुण्डलिया—(डिंगल मे कुण्डलिया छन्द के ग्रनेक भेद मिलते हैं, परन्तु प्रसिद्ध रूप शुद्ध कुण्डलिया मे दोहे के पश्चात् चार चरण रोला के समान होने चाहिए। कुल 6 चरणों मे प्रथम तो दोहा (13, 11 मात्राएं ग्रौर ग्रन्त मे गुरु-लघु (ऽ।) से तुकान्त) ग्रौर ग्रागे 24 मात्राग्रो वाले चार चरण जिनमे 11, 13 पर यति होती है। दोहा के ग्रन्तिम चरण की ग्रावृत्ति रोला के प्रारम्भ मे ग्रौर रोला के ग्रन्तिम शब्दो की ग्रावृत्ति दोहे के ग्रारम्भ मे होनी है।)

शुद्ध कुण्डलिया

माळा फेरै मीनको, छापा तिलक सरीर।
किय कांकण केदार रा, नावै गंगा नीर।
नावै गंगा नीर, जगत नै मोह जणावै।
मन में रहै मलीन, गांठ को भरम गमावै।

कह 'केसर' करतूत, ऊंदरा सोजै ग्राळा।
छापा तिलक सरीर, मींनकी फेरै माळा॥

(केसरीसिंह जैतावत)

कुण्डलिया राजवट—(शुद्ध कुण्डलिया, राजवट, झड़ उलट और दोहाल भेद विशेषत: मिलते हैं। राजवट कुण्डलिया में प्रथम तो दोहा और आगे छप्पय होता है। इसमें विशेषता यह होती है कि दोहे के अन्तिम चरण का छप्पय के प्रथम चरण के रूप में सिंहावलोकन होता है। इसी प्रकार ऊपर वाले दोहे के प्रथम चरण का छप्पय के अन्तिम चरण के रूप में पुन: सिंहावलोकन होता है।)

धरम बीज धीरो वधै, वड़ पींपळ विस्तार।
एरंड कुवृच्छ आकड़ो, वधत न लावै वार।
वधत न लावै वार, पांच मासे फळ पक्कै।
वरसां तीन विलाय, थूळ सहती जड़ थक्कै।
दस वरसां दुय डाळ, वीस वरसां वड हाई।
सौ वरसां सौ साख, साख जेता वड़ सोई।
केहरी कहै पुन कूंपळां, साख साख हूंता सधै।
पाप री बीज परळै हुवै, धरम बीज धीरो वधै॥

(केसरीसिंह जैतावत)

झड़उलट—(इस कुण्डलिया में सर्व प्रथम तो दोहा और फिर 20, 20 मात्राओं के चार पद होते है। दोहे के चौथे चरण की आगे वाले पाँचवें पद के प्रारम्भ में तथा प्रथम चरण की अन्तिम पद मे प्रकारान्तर से आवृत्ति होती है।)

केहरि केस भमंग-मणि, सरणाई सुहड़ांह।
सती पयोहर क्रपण धन, पड़सी हाथ मुवांह।
मुवांहिज पड़सी हाथ भमंग-मणि।
— सरणाइयां ताहरै गैंडसणि।

13-13 मात्राएँ तथा दूसरे भौर तीसरे चरण में 11-11 मात्राएँ होती हैं। द्वितीय भौर तृतीय चरण सतुकान्त होते हैं। यथा—

सैणां इण संसार में, सदा सुभीतै सुक्ख।
देखा-देखी दुक्ख, जठी तठी नै जोयलो ॥

सोरठियो दूहो—यह हिन्दी का सोरठा छन्द है। इसके पहले भौर तीसरे चरण में 11-11 मात्राएँ तथा दूसरे भौर चौथे चरण में 13-13 मात्राएँ होती हैं। मध्य में गुरु लघु (ऽ।) से तुकान्त होता है। यथा—

बक बक सूं बेकार, वणी वात जावै बिगड़।
सांप्रत दीठो सार, चुप रहणै में चकरिया ॥

खोड़ो दूहो—यह हिन्दी के सोरठे का ही एक खण्डित रूप है, इसीलिए इसे खोड़ा (लंगड़ा) दूहा कहा जाता है। इसके पहले भौर तीसरे चरण में 11-11 मात्राएँ होती हैं भौर दूसरे तथा चौथे चरण में क्रमशः 13 भौर 6 मात्राएँ होती हैं। पहले भौर तीसरे चरण का मध्य में गुरु-लघु (ऽ।) से तुकान्त होता है। यथा—

कर कूटियइ कपाळ, श्रीकम तो विमुखां तणा।
घड़ी घड़ी घड़ियाळ, वाजै वस० ॥

विशेष—वस्तुत 'खोड़ा दूहा' सर्वमान्य भेद नहीं है। उपर्युक्त उदाहरण में इसके लक्षण तो मिल जाते हैं, किन्तु वास्तविकता छूट जाती है। हमारे यहां सम्बोधन के रूप में सोरठे रचने की प्राचीन परम्परा रही है। भगवान राम भौर श्रीकृष्ण की भक्ति में महाकवि पृथ्वीराज राठौड़ ने 'ठाकुरजी रा दूहा' शीर्षक से भनेक सोरठे रचे, जिनमे राम भौर कृष्ण को क्रमशः 'दशरथरावउत' भौर 'वसदेरावउत' कह कर सम्बोधित किया है। भक्ति भौर नीति विषयक रचनाभों की प्रतिलिपियाँ बहुत मिलती हैं भतः प्रतिलिपिकर्ता भ ना समय भौर श्रम बचाने के उद्देश्य से भन्तिम शब्द को बार-बार पूरा न से संक्षिप्त रूप मे लिख देता था। इस प्रकार बहु प्रचलित एवं को छोटे रूप में लिखा जाना ही कालान्तर मे 'खोड़ा दूहा' बन

गया। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है, जो उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं।

राजस्थानी के लोकप्रिय विविध छन्दों और विशेषकर दूहो के मात्रिक भेद जानने के साथ ही 'चोकड़िया अनुप्रास' और 'वैणसगाई' की जानकारी भी आवश्यक है, जो यहाँ के मौलिक अलंकार हैं। दूहे या सोरठे के चारों ही चरणों मे वैणसगाई के साथ एक जैसे चार अनुप्रास आएँ, तो वहाँ 'चोकड़िया अनुप्रास' बनता है। यदि अच्छे भाव के साथ ऐसा अलंकरण हो तो सोने मे सुगन्ध वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

दूहे में चोकड़िया अनुप्रास :

न्यारो सब सूं नूर में, उणियारो आवाज।
श्रवणां प्यारो सांपरत, जस थारो जसराज॥

सोरठे में चोकड़िया अनुप्रास :

जस गुण तणो जहाज, कुळ समाज अंजस करै।
आखै दुनियां आज, रंग घणा जसराज नै॥

वैणसगाई :

वैणसगाई अथवा वयणसगाई शब्द 'वरणसगाई' से बना हुआ है, जिसका अर्थ होता है वर्ण-सम्बन्ध। जिस प्रकार दो परिवारों मे सगाई-सम्बन्ध हो जाने पर पुराना वैर स्वत: मिट जाता है, उसी प्रकार वैणसगाई (अक्षरों का सम्बन्ध) होने पर काव्य मे अशुभ गणों और दग्धाक्षरों का दोष नहीं रहता। यह चारण-काव्यधारा की एक प्रमुख विशेषता है। वस्तुत. वैणसगाई एक प्रकार का शब्दालंकार है, जो चरण के प्रथम और अन्तिम शब्दों मे मैत्री स्थापित करता है। डिंगल-गीतों में तो वैणसगाई का निर्वाह अनिवार्य माना गया है, क्योंकि ये गीत चारण साहित्य की मौलिक निधि है। कहा भी है—

अधिकारी गीतां अवस, चारण सुकवि प्रचंड।
कोड़ प्रकारां गीत को, मुरधर भाषा मड॥

(रघुवर जस प्रकास)

वैणसगाई के मुख्य तीन भेद माने गये हैं—आदिमेल, मध्यमेल और अन्तमेल। इनके लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत हैं—

आदिमेल—जहाँ चरण के प्रथम शब्द के आदि वर्ण को चरण के अन्तिम शब्द के आदि में पुनः लाकर सम्बन्ध स्थापित किया जाय, वहाँ आदिमेल वैणसगाई होती है। आदिमेल के उदाहरण अधिकांशतः मिलते हैं। यथा—

कांम भलो-भूंडो करो, प्रभुता अपणी पेख।
मत कूदे रे मांनखा, दूजां रो बळ देख॥

मध्यमेल—जहाँ प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति चरणान्त के शब्द के मध्य में हो, वहाँ मध्यमेल वैणसगाई होती है। यथा—

गरज कियां सूं वागरो, कदे न तजै सिकार।
रटै हरी गुण वारता, कटै कळेस विकार॥

अन्तमेल—जहाँ प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति चरणान्त शब्द के अन्त में हो, वहाँ अन्तमेल वैणसगाई होती है। यथा—

निरख्यो इण संसार नै, लुक छिप रांमत खेल।
मिनख भलां री है कमी, लाख मिळै बिगडेल॥

उपर्युक्त तीन भेदों के अतिरिक्त एक 'समीप वैणसगाई' का रूप भी मिलता है, जिसे कई विद्वानों ने 'असाधारण वैणसगाई' कहा है। इसमें आदि वर्ण का मेल अन्तिम शब्द के पूर्व शब्द (उपान्त्य) में स्थापित किया जाता है। इसे निकट वैणसगाई भी कह सकते है। यथा—

(क) आव कह्यां आयो नहीं। (ग) जीमैं जिनस अनेक।
(ख) मजलिस व्है मित्रां तणी। (घ) हद भारी हुय जाय।

यहाँ पर यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि राजस्थान और इसके अतिरिक्त गुजरात, सिन्ध आदि में भी डिंगल-काव्यधारा के अन्तर्गत वैणसगाई का 'आदिमेल' रूप ही सर्वप्रिय एवं सर्वश्रेष्ठ माना गया है। प्रायः नब्बे प्रतिशत उदाहरण आदिमेल के ही मिलेंगे। वस्तुतः आदिमेल में जो नाद-सौन्दर्य ध्वनित होता है, वह मध्यमेल में अल्प और अन्तमेल में नगण्य रह जाता है। यही कारण है कि मध्यमेल और अन्तमेल के स्वतंत्र उदाहरण मिलते ही

नहीं, वे लक्षण-ग्रन्थों के नमूने के तौर पर रचने पड़ते हैं। आदिमेल के पश्चात् तो असाधारण वैणसगाई के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलेंगे। राजस्थानी के इस मौलिक एवं लोकप्रिय अलंकार ने कर्णप्रियता के कारण काव्य को कंठस्थ करने में सहायक सिद्ध होने के साथ ही खण्डित प्रति के मूल-पाठ तक पहुंचने में भी अपूर्व योगदान किया है। यह गौरव का विषय है कि राजस्थानी भाषा में सम्बोधन के रूप में जितना भी उच्च कोटि का नीति-काव्य रचा गया, उसमें आद्योपान्त वैणसगाई का निर्वाह मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन से यही प्रमाणित होता है कि राजस्थान मे नीति-सम्बन्धी काव्य प्रायः सभी लोकप्रिय छन्दों मे प्रणीत हुआ है, किन्तु दूहों मे अपेक्षाकृत अधिक और सोरठा अथवा सोरठिया दूहों मे सर्वाधिक रचना हुई है। सोरठिया दूहा काव्य और सगीत दोनो दृष्टियो से राजस्थान और उसके बाहर जहाँ राजस्थानी भाषा बोली अथवा समझी जाती है—गुजरात, मालवा और सिन्ध मे—बहुत लोकप्रिय हुआ। जनकण्ठो मे निवास करने वाले इसी सोरठिये दूहे की प्रसिद्धि का परिचायक यह दोहा पठनीय है—

सोरठियो दूहो भलो, भल मरवण री वात ।
जोवन छाई धण भली, तारां छाई रात ।।

यही कारण है कि राजस्थानी भाषा के कवियो ने अपने किसी सेवक, शिष्य, सम्बन्धी, स्नेही अथवा स्वगत-सम्बोधनार्थ जितना भी नीति-काव्य रचा, वह प्रायः सोरठा छन्द मे ही है। सम्बोधन काव्य की सजीवनी सरिता ने इस मरुस्थलीय सिकता को सतत एव सम्यक्रूपेण अभिसिंचित किया है। सत्य-साक्ष्य अनुभव की उक्तियाँ हितैषणा के हिमगिरि से द्रवित और स्रवित होकर नीति-निर्झरिणी के रूप मे जन-मानस मे नव्य निनाद उत्पन्न करती है। आत्मीयता से आप्लावित ज्ञान की गंगा अपने से छोटो अथवा आकांक्षों के हितार्थ स्वतः स्फूर्त एवं सहज रूप मे प्रकट हो जाती है।

देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण से उऋण होना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है और इन तीनों की परिशोध-प्रणाली नीति-काव्य मे निहित है। 'बात करामात' जैसी कहावत के पीछे कथ्य और कथन का महत्त्व सकेतित है।

अर्जित ज्ञान और अनुभव का निचोड़ उसी व्यक्ति को प्रदान किया जाता
जिसके लिए हृदय में चिन्ता और ममता होती है। किसी के जीवन को
और समुन्नत बनाने की शुभाकांक्षा से प्रेरित होकर कहे गये वचनों
का नाम और भव्य निदर्शन ही नीति-काव्य है। इस दृष्टि से नीति-काव्य
व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को सजग एवं सतर्क रखता हुआ मानव
सभ्यता के सोपान उन्नत करता है। जहां नीति नहीं वहां अनीति है
और अनीति का अन्तिम परिणाम ही विनाश होता है। कहा भी है—

प्रति अनीति से जात है, राज तेज श्ररु वंस।
तुलसी तीनों देखलो, कौरव रावण कंस॥

राजस्थानी का यह दोहा भी इसी तथ्य को उजागर करता है—

धरा रतन री श्राण में, पुनि निपजै पाषांण।
जार चोर प्रति जबर रो, होत पाछेर्य हांण॥

नैतिकता का प्रतिष्ठापन ही नीति-काव्य का उद्देश्य होता है। कोई
बाप यह नहीं चाहेगा कि उसके बेटे में कमी रहे और कोई भी गुरु
चाहेगा कि उसका शिष्य हल्का रहे, इसीलिए हमारे पूर्वजों ने यही धारणा
रखी थी, कि 'पुत्रात् शिष्यात् पराजयेत्।' जो व्यक्ति किसी अन्य से बहस
करने के पूर्व स्वयं से बहस करता है, उसकी बात राज्य-कचहरी तक में
रहती है। कवि कृपाराम खिड़िया ने राजिया को सम्बोधित करते हुए यही
कहा है—

मन सूं झगड़ै मोर, पैलां सूं झगड़ै पछै।
त्यांरा घटै न तौर, राज कचेड़ी राजिया॥

हितैषी-भाव से सार की बातें समझने के उद्देश्य से प्रणीत सम्बोधन
काव्य की राजस्थानी साहित्य में एक सुदीर्घ परम्परा रही है। स्वजन
संभापण से शुरू होकर किसी परिचारक, परिजन, प्रिय अथवा प्रसिद्ध व्यक्ति
अपने अनुभूत सत्य से अवगत कराने की अदम्य अभिलाषा ही इस कोटि
सोरठा-सृजन का प्रमुख कारण रही है। सौजन्य, सौहार्द एवं स्नेह का अ
नवार्य लक्षण है कि वह अपने अधिकार की उत्तम वस्तु अपनों को अर्पि

कर दे। त्याग की यह भव्य भावना पवित्र प्रेम की विराटता का प्रमाण है। सम्बोधित काव्य की इसी श्रेणी में राजिया, मोतिया, किसनिया, भैरिया, नाथिया, फूसिया, केलिया, ईलिया, जेठवा, दादुवा, नागजी, वागजी, चकरिया, तुलछिया, ग्रादिया, केसिया, हीरिया, गोरिया, मुकनिया, भंवरिया, केशवा, इन्द्रवा, वैणिया, रमणिया, बीभरा, नोपला, दांनिया, भांनिया, छोटिया, कानिया, रूपजी, देवसी, भानसी, सजनसी इत्यादि ज्ञात-अज्ञात सैकड़ों सोरठा-संग्रह रचे गये, जिनमें नीति के अनमोल नगीने दीप्तिमान हैं। वैणसगाई युक्त इन नीति-वचनों की कुछ बानगी उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है—

मोतिया रा सोरठा (रायसिंह सांदू, गाँव मिरगेसर कृत) :

खाटी अपणी खाय, आठ पहर सिमरै अनंत।
जिणरी कदे न जाय, महळ उधारै मोतिया॥
राखै धेस न राग, भाखै नह जोभां बुरो।
दरसण करतां दाग, मिटै जनम रा मोतिया॥

किसनिया रा सोरठा :

आवै वस्तु अनेक, हद नांणो गांठे हुवै।
अकल न आवै अेक, ओड़ रुपैये किसनिया॥
सोनो घड़ै सुनार, कन्दोई खाजा करै।
भोगै भोगणहार, करम प्रमांणै किसनिया॥

भैरिया रा सोरठा :

कुन्दण पीतळ कंत, एक भाव कर आदरै।
है उण ठाकर हूंत, भाखर सखरो भैरिया॥
रहणा इकरंगाह, कहणा नहिं कूड़ा कथन।
चित ऊजळ चगाह, भलाज कोई भैरिया॥

नाथिया रा सोरठा :

निज रस भरिया नैण, मिळतां ही मुळक्या नहीं।
बोल्या जिणसूं बैण, नेह न उपजै नाथिया॥

अर्जित ज्ञान और अनुभव का निचोड़ उसी व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जिसके लिए हृदय में प्रियता और ममता होती है। किसी के जीवन को सत् और समुन्नत बनाने की शुभाकांक्षा से सत्प्रेरित होकर कहे गये आप्त वचनों का नव्य और भव्य निदर्शन ही नीति-काव्य है। इस दृष्टि से नीति-काव्य व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को सजग एवं सतर्क रखता हुआ सफलता एवं सम्पन्नता के सोपान इंगित करता है। जहाँ नीति नहीं वहाँ अनीति होती है और अनीति का अन्ततः परिणाम ही विनाश होता है। कहा भी है—

अति अनीति से जात है, राज तेज अरु वंस।
तुलसी तीनों देखलो, कौरव रावण कंस॥

राजस्थानी का यह दोहा भी इसी तथ्य को उजागर करता है—

खरा रतन री खांण में, पुनि निपजै पाखांण।
जार चोर अति जबर री, होत पाछैपै हांण॥

नैतिकता का प्रतिष्ठापन ही नीति-काव्य का उद्देश्य होता है। कोई भी बाप यह नहीं चाहेगा कि उसके बेटे में कमी रहे और कोई भी गुरु नहीं चाहेगा कि उसका शिष्य हल्का रहे, इसीलिए हमारे पूर्वजों ने यही आकांक्षा रखी थी, कि 'पुत्रात् शिष्यात् पराजयेत्।' जो व्यक्ति किसी अन्य से बहस करने के पूर्व स्वयं से बहस करता है, उसकी बात राज्य-कचहरी तक में बनी रहती है। कवि कृपाराम खिड़िया ने राजिया को सम्बोधित करते हुए यही तो कहा है—

मन सूं झगड़ै मोर, पैलां सूं झगड़ै पछै।
त्यांरा घटै न तौर, राज कचेड़ी राजिया॥

हितैषी-भाव से सार की बातें समझने के उद्देश्य से प्रणीत सम्बोधन-काव्य की राजस्थानी साहित्य में एक सुदीर्घ परम्परा रही है। स्वगत-संभाषण से शुरू होकर किसी परिचारक, परिजन, प्रिय अथवा प्रसिद्ध व्यक्ति को अपने अनुभूत सत्य से अवगत कराने की अदम्य अभिलाषा ही इस कोटि के सोरठा-सृजन का प्रमुख कारण रही है। सौजन्य, सौहार्द एवं स्नेह का यह अनिवार्य लक्षण है कि वह अपने अधिकार की उत्तम वस्तु अपनों को अर्पित

कर दे। त्याग की यह भव्य भावना पवित्र प्रेम की विराटता का प्रमाण है। सम्बोधित काव्य की इसी श्रेणी में राजिया, मोतिया, किसनिया, भैंरिया, नाथिया, फूसिया, केलिया, ईलिया, जेठवा, दादुवा, नागजी, वागजी, चकरिया, तुलछिया, ग्रादिया, केसिया, हीरिया, गोरिया, सुकनिया, भंवरिया, केशवा, इन्द्रवा, वैरिया, रमरिया, वीझरा, नोपला, दांनिया, भानिया, छोटिया, कानिया, रूपजी, देवसी, मानसी, सजनसी इत्यादि ज्ञात-अज्ञात सैंकड़ों सोरठा-संग्रह रचे गये, जिनमें नीति के अनमोल नगीने दीप्तिमान हैं। वैरणसगाई युक्त इन नीति-वचनों की कुछ बानगी उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है—

मोतिया रा सोरठा (रायसिंह सांदू, गाँव मिरगेसर कृत).

खाटो अपणो खाय, आठ पहर सिमरै अनंत।
जिणरो कदे न जाय, महळ उधारै मोतिया॥
राखै धेस न राग, भाखै नह जीभां बुरो।
दरसण करतां दाग, मिटै जनम रा मोतिया॥

किसनिया रा सोरठा :

आवै वस्तु अनेक, हद नांणो गांठे हुवै।
अकल न आवै अेक, क्रोड़ रुपंये किसनिया॥
गोनो घड़ै सुनार, कन्दोई खाजा करै।
भोगै भोगणहार, करम प्रमांणै किसनिया॥

भैंरिया रा सोरठा :

कुन्दण पीतळ कूंत, एक भाव कर आदरै।
है उण ठाकर हूंत, आघर मगरो भैंरिया॥
रहणा इकरंगाह, कहणा नहि कूड़ा कथन।
चित ऊजळ चगाह, भलाज कोई भैंरिया॥

नाथिया रा सोरठा :

निज रस भरिया नैण, मिळतां ही मुळक्या नहीं
बोल्या जिणसूं बैण, नेह न उपजै नाथिया

बिध्यो न उर छिब बांण, राग सुणे रीझ्यो नहीं।
ते मूरति पाखांण, नाहक जनम्यो नाथिया ।।

केलिया रा सोरठा :

जांणे न बिछू जाप, श्रांणे नर मन ही श्रजस।
सो नर काळे साप, कर क्यों घाले केलिया ।।
कण नग जड़िया कोट, सब ही लंका सोहनो।
पलेंज रांवण पोट, कासू लेग्यो केलिया ।।

जेठवा रा सोरठा :

जळ पीधो जाडेह, पावासर रेठे पाव।
नैनकियै नाडेह, जीव न धापै जेठवा ।।
श्रावै श्रौर श्रनेक, ज्यों पर मन जावै नहीं।
दीसै तो बिन देख, जागा सूनी जेठवा ।।

वींभरा रा सोरठा :

श्रायां कहै न श्राव, वळतां नह वोळावणो।
पाछो उण घर पाव, वळे न दीजे वींझरा ।।
हीयै सो होठेह, वा मत वीरा श्रांणजे।
तिथ जावै तोटेह, वार न तूटै वींझरा ।।

नोपला रा सोरठा (लालजी दधवाड़िया कृत) :

काया श्रमर न कोय, थिर माया थोड़ी रहै।
दुनि में वातां दोय, नांमा कांमा नोपला ।।
तुलै न परवत तोल, मोल नहीं मूरखतणो।
वडै मिनख रा बोल, नग कण भारी नोपला ।।

नागजी रा सोरठा :

पूरा जळ पोद्याह, सागर भी तो सारखा।
ऊभळकै श्रोद्याह, नाडा भरिया नागजी ।।
चलतां हलतां चीत, सूतां बैठां सारखो।
पड़ै न जूनी प्रीत, नैण लग्योड़ी नागजी ।।

चकरिया रा सोरठा (शाह मोहनराज कृत) :

भलां नरां घर भूक, चोरां रै घर चूरमा ।
चतुरानन री चूक, चवड़ै दीसै चकरिया ।।
वखत जावसी बीत, जासी बात न जगत सूं ।
गासी दुनियां गीत, चोखा भूंडा चकरिया ।।
पेट ज भरता पीस, नीठ मिळी जद नोकरी ।
रिश्वत खाय रईस, चट वरा बैठा चकरिया ।।
जात पांत कुळ जोय, मोद न मन में लावणो ।
हुनर हाथ नहि होय, चिरणा न मिळसी चकरिया ।।

ग्रादिया रा सोरठा (रिड़मलदान सादू, भिरगेसर कृत) .

विध विध वधै विचार, ग्रोगण पण होवै अळग ।
सतसंगत में सार, ग्राछा नर री ग्रादिया ।।
धारै उलटो धेस, गुण कीधां ग्रोगुण गिणै ।
अळगा सूं ग्रादेस, ग्रोगुणगारां ग्रादिया ।।

होरिया रा सोरठा (राव रामदान कृत) :

छत्र तणी सिर छांह, नभ लागां वहता निडर ।
मिळग्या माटी मांह, हूं हूं करता होरिया ।।
मोर हुवा महमंत, मोर अंब सोरभ महक ।
वालम विनां वसंत, है दुखदाई होरिया ।।

गोरिया रा सोरठा (जसकरण रतनू, थौपासणी कृत) :

टणकपर्ण टुकडेल, लोक तणी सुध नां लहै ।
खलक तणो ग्रो खेल, गजब विगड़ियो गोरिया ।।
दुनियां खेलै दाव, हालै दोरी हुकमियां ।
वाजै जितै वजाव, गाजर पूंगी गोरिया ।।

मुरनिया रा सोरठा (मुनि मिश्रीमलजी महाराज कृत)

काया माया कुंभ, है काचा सोचो हियै ।
धोया थळ रा धुंभ, सररर उडसी मुरनिया ।।

पत पइसां रै लार, आदर दे अरणमाप रौ।
वित पइसां वेकार, सुल्या धांन ज्यूं सुकनिया ।।

भँवरिया रा सोरठा (तखतदान बारठ, आंगदोप कृत) :

सुध मन देवरण सीख, नर विरळा आवै निजर।
लुचपरण री लोकीक, भरी ठगां में भँवरिया ।।
ठगपरण रौ ठेकोह, बीरा केइ लीधां वहै।
दुनियां में देखोह, (वांने) भाखे पंडत भँवरिया ।।

केशवा रा सोरठा :

न्यारा न्यारा नांम, भेष देख भूलौ मती।
सबको मालिक श्यांम, कीजे भगती केशवा ।।
रांणे कीनी रीस, मीरा ऊपर मोकळी।
जपत रही जगदीस, कायम चित सूं केशवा ।।

भांनिया रा सोरठा (उदयराज उज्ज्वल कृत)

राज करंता रूस, जार बंदूकां जोर सूं।
परजा कढियौ फूस, भलो न अत गत भांनिया ।।
करता वेम कदेक, क्यूं ईसौ फांसी कियौ।
दिस गांधी री देख, भयौ भरोसौ भांनिया ।।
आयौ समंद उफांण, की हिंसा दाबरण करै।
रांम अनैं रहमांण, भारत भेळा भांनिया ।।

इन्द्रवा रा सोरठा (डा. शक्तिदान कविया कृत)

घरण सुख रो घड़ियांह, सगळी दुनियां साथ दै।
परण अबखी पड़ियांह, आवै विरळा इन्द्रवा ।।
दूर सुगंधी देख, भेळा व्है दिस-दिस भँवर।
खां (इ) वातां लेख, इलम बडौ है इन्द्रवा ।।
कारण प्रीत, घटती देखी घरणकरी।
व्है मीत, उरण मत विरणजे इन्द्रवा ।।

रूपजी रा सोरठा (बदरीदान गाडण, गाँव हरमाड़ा कृत) :

वणे बीगड़ी वात, नीत भली राख्यां निपट ।
भळे हुवै परभात, रात बीतियां रूपजी ।।
ग्राद जिकण रौ अंत, मन में निहचै मांनजे ।
वरसाळौ'र वसंत, रयो सदा कद रूपजी ।।

वैणिया रा सोरठा (वैणीदान बारठ, गांव भोमाड कृत) :

हालक चालक होय, हर कोई हस नै मिळै ।
दुक्ख पड़ै दिन दोय, वात न पूछे वैणिया ।।
सुख दुख रौ संसार, केता भव वीता कहू ।
किया सहै किरतार, वध घट वातां वैणिया ।।

देवसी रा सोरठा (राजा फतैसिंहजी ग्रासोप कृत) :

खरचौ वडो खराब, ग्रामद सूं करणौ इधक ।
सब दिन पीणं शराब, दुख रौ मारग देवसी ।।
हीमत मत हारीह, धारौ सिर ऊपर धरम ।
परमारथ प्यारीह, दीन उवारौ देवसी ।।

भानसी रा सोरठा (राजा फतैसिंहजी ग्रासोप कृत)

नीच पुरुप रो नेह, देह छेह करसी दगौ ।
कपटी मित्र कदेह, भूल न कीजे भानसो ।।
पुन री वांधौ पाज, पाप किया पछतावणौ ।
कर सुकृत जस काज, भारी ग्रानंद भानसी ।।

सजनसी रा सोरठा (राजा फतैसिंहजी ग्रासोप कृत) :

पायौ पुन परताप, मानुप तन महँगौ मिल यौ ।
पोचा खोटा पाप, सो मत करजे सजनसी ।।
मीठा बोल ग्रजाद, कदे न कहणौ कटु वचन ।
यां वातां नै याद, सदा राखजे सजनसी ।।

फूसिया रा सोरठा :

ऊंचोड़ा आवास, अळगा सूं दीसै अवस ।
घरणी बिन घरवास, फीको लागै फूसिया ।।

ईलिया रा सोरठा :

पड़वै पोढंतांह, करड़ावण हर कोइ करै ।
धारां में धसतांह, आवै आंसू ईलिया ।।

दांनिया रा सोरठा :

सबसूं बुरो सुनार, बांण्यो उणसूं ही बुरो ।
दरजी दांनतदार, दीठो कोइ न दांनिया ।।

तुलछिया रा सोरठा (माधूदान उज्ज्वल, गांव ऊजलां कृत)

वावण रो ज्यां वार, अरियां में आवै नहीं ।
तुपक तीर तरवार, ते क्यूं धारै तुळछिया ।।

छोटिया रा सोरठा :

सपना रो संसार, जांणै पण भूलै जगत ।
आंणै गरब अपार, छिन भर में नर छोटिया ।।

कांनिया रा सोरठा (कानसिंह भाटी, गड़ा कृत) :

आवै नीं क्षण अेक, चालै जो नित चाक ज्यूं ।
काय सुधारै के'क, करणी मोटी कांनिया ।।

राजिया रा सोरठा (कृपाराम खिड़िया कृत) :

नीति-सम्बन्धी राजस्थानी सोरठों में सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं परि रचना 'राजिया रा सोरठा' है। भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से इनके अन्य कोई सोरठा-संग्रह नहीं ठहरता। सम्बोधन-काव्य के रूप में संभव प्रथम रचना है, जिसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर समकालीन और वर्ती अनेक कवियों ने नीति-सोरठों की रचना की। राजिया के सोरठे स होने का कारण है रचनाकार की विद्वत्ता और बहुज्ञता। प्रज्ञा और प्रति कृपाराम में मणिकाञ्चन-योग था, जिसके फल-स्वरूप ऐसे विलक्षण

काव्य की रचना सम्भव हो सकी। भावो के अनुरूप भाषा का प्रयोग इस कवि का कौशल है। सारगर्भित सूक्तियो के कारण 'स्वल्पाक्ष मात्रा बहुलो गुणश्च' की उक्ति राजिया के सोरठो पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। इन सोरठो की [illegible] और कीर्ति से प्रभावित होकर जोधपुर के विद्वान् महाराजा मानसिहजी ने इस राजिया को देखने के लिए अपने दरबार मे बुलाया और उसके भाग्य की सराहना करते हुए यह सोरठा सुनाया था :

सोनै री साजांह, जड़िया नग-कण सूं जिके।
कीनो कवराजांह, राजां मालम राजिया।।

अर्थात् हे राजिया ! सोने के आभूषणो मे रत्नो के जडाव की तरह ये सोरठे रच कर कविराजा ने तुझे राजाओं तक मे प्रख्यात कर दिया। वास्तव मे आज भी राजिया का नाम तो सभी लोग जानते हैं, किन्तु कृपारामजी को बहुत कम लोग जानते है। कवि कृपाराम खिड़िया शाखा के चारण थे। इनके पिता जगरामजी मारवाड़ के गाँव खराडी के निवासी थे, जिन्हे कुचामन के ठाकुर जालमसिहजी ने अपने ठिकाने का जूसरी गाँव प्रदान किया था। कृपारामजी का जन्म इसी गाँव मे हुआ था। वे डिंगल और पिंगल के उत्तम कवि होने के साथ ही संस्कृतज्ञ भी थे। सीकर नरेश देवीसिहजी और उनके पुत्र रावराजा लक्ष्मणसिहजी ने कवि कृपारामजी की विद्वत्ता और गुणो से प्रभावित होकर क्रमशः महराजपुरा और लक्ष्मणपुरा गाँव जागीर में इनायत किये थे। इन गाँवों के ताम्रपत्र क्रमशः वि. सं. 1847 और सं. 1858 वि. के हैं। राजिया (राजाराम) का जन्म सं. 1825 के लगभग गाँव जूसरी में हुआ था और यह कृपारामजी का विश्वस्त सेवक था। एक बार कृपारामजी बहुत बीमार हुए तब राजिया (जो एक रावणा राजपूत था) ने इनकी खूब सेवा की। कहते हैं कि राजिया के कोई सन्तान नहीं थी अतः वह बहुत उदास रहता था, कि मरणोपरान्त उसका नामलेवा भी नही रहेगा। कवि ने कहा कि वह कविता के द्वारा उसे अमर बना देंगे और तब से उन्होंने राजिया को सम्बोधित कर नीति के सोरठे रचने शुरू कर दिये। धीरे-धीरे उनकी संख्या सातबीसी (140) के लगभग हो

गई, ऐसी किंवदन्ती है।

राजिया के प्रामाणिक सोरठों के लिए मैंने अनेक हस्तलिखित संग्रहालयों में खोज की, परन्तु 123 सोरठों से अधिक किसी भी प्रति में नहीं मिले। पुरानी प्रतियों में प्राप्त उन 123 सोरठों का तो क्रम भी एक समान है अतः उनकी प्रामाणिकता में तो संशय नहीं, किन्तु फुटकर सोरठे जो राजिया के नाम से यत्र-तत्र मिले, उनमें अधिकांश क्षेपक हैं। यद्यपि प्राचीन प्रतियों में भी मामूली पाठभेद तो है, फिर भी उनकी प्राचीनता, वैणसगाई, भाषा की प्रांजलता और छन्द की दृष्टि से मूलपाठ तक पहुचने का पूरा प्रयास किया है। इस प्रति में कुल 140 सोरठे संगृहीत हैं, उनमें भी अन्तिम दो-चार की प्रामाणिकता में सन्देह है। उदाहरणार्थ पुरानी प्रतियों मे यह सोरठा है :

पहली किया उपाव, दव दुसमण आमय दटै।
प्रचंड हुवां विष वाव, रोभा घालै राजिया ।।

यही भाव राजिया के नाम से बहुत प्रसिद्ध एक अन्य सोरठे में भी विद्यमान है, जिसे इस संग्रह के अंतिम अंश में संकलित किया गया है। यथा—

रोग अगन अरु राड़, ज्यांरा धुर कीजे जतन।
वधियां पछै विगाड़, रोकयो रहै न राजिया ।।

राजिया के सोरठे अनेक लोगों ने प्रकाशित किये हैं, किन्तु उनमें अधिकांश की वही दशा है जो मीरां और कबीर के नाम से चलने वाले भजनों की है। काव्य की अधिक लोकप्रियता ही उसके मूल रूप को अधिक विकृत कर देती है। राजिया के सोरठों की रचना विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ में हुई थी। तब से लेकर सन् 1988 तक राजिया के नाम से यत्र-तत्र सोरठे रचे जाते रहे हैं। इसके पूर्व प्रकाशित राजिया के सोरठों के सभी संग्रह प्रक्षिप्त अंशों से भरे पड़े है। किसी में शब्दार्थ गलत है, तो कहीं किसनिया, नाथिया, केलिया आदि के सोरठों के साधारण परिवर्तन के साथ के सोरठे मान कर प्रकाशित कर दिया है। कुछ प्रतियों भ्रष्ट पाठ है। इन त्रुटियों का कारण यह था, कि कुछ सम्पादक तो

संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान अवश्य थे, किन्तु डिंगल भाषा में उनकी उतनी गति नहीं थी। कुछ ऐसे लोग भी थे, जिन्होंने या तो किसी से अर्थ लिखवाया अथवा किसी की नकल मात्र कर काम चला दिया। ऐसे लोगों का उद्देश्य साहित्यिक कम और व्यावसायिक अधिक रहा। मामूली हेरफेर के साथ एक ही सोरठे की पुनरुक्ति, प्रक्षिप्त अंश और छन्द-दोष आदि का अनावश्यक विस्तार-भय से उल्लेख न करते हुए केवल एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता। 'नाथिया रा सोरठा' भी बहुत प्रसिद्ध है और इनकी प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियाँ भी खूब मिलती हैं। फिर भी नाथिया को सम्बोधित किया गया एक सोरठा राजिया के नाम से श्री नरोत्तमदास स्वामी, श्री जगदीशसिंह गहलोत, श्री चतुरसिंह बीका, श्री अचलसिंह भाटी और न जाने कितने लोगों ने एक दूसरे की देखादेखी प्रकाशित कर दिया है। यथा—

गोली गोरे गात, पर घर दीसै पदमणी।
पतलज मागे बात, रती न कीजे राजिया॥

उपर्युक्त सोरठे में न भाव-तारतम्य है, न भाषा की प्रौढ़ता और तृतीय चरण में वैणसगाई भी नहीं है। वस्तुतः यह नाथिया का सोरठा है, जिसका शुद्ध पाठ इस प्रकार है—

चेरी चंचळ जात, पदमण सी दीसै प्रगट।
बांदी सूं दो बात, निमख न कीजे नाथिया॥

यह एक विचित्र बात है कि कृपाराम खिड़िया कृत राजिया के सोरठों के रचना-काल से लगभग दो सौ वर्ष पहले 'राजिया' शब्द को सम्बोधित करते हुए कई कवियों ने सोरठे रचे थे। दो-एक उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

बीकानेर के महाकवि पृथ्वीराज राठौड़ ने एक बार आगरा में बादशाह अकबर के 'नवरोजों' से सपरिवार पिण्ड छुड़ाने के लिए चारणी महाशक्ति राजबाई का आवाहन किया था। संकट की घड़ी में 'साहल' (आर्त्तनाद) के रूप में रचा गया पृथ्वीराज कृत वह डिंगल-गीत आज भी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में मिलता है। उस गीत का अन्तिम दुहाला था :

सेवग साहळ सुणो सचाळी । ताय मिळी मुझ एकण ताळी ।
'पीथल' वाहर काछ पंचाळी । धाइयो चारण धावळियाळी ।।

ऐसी मान्यता है, कि काछेली महाशक्ति राजबाई वहाँ आई और उसने अपने दिव्य प्रभाव से पृथ्वीराज राठौड़ की लाज-मर्यादा सुरक्षित रखी । इस घटना के उपलक्ष्य में आभार प्रकट करते हुए पृथ्वीराज ने एक सोरठा कहा था, जिसमें देवी राजबाई के लिए 'राजिया' शब्द का प्रयोग हुआ है । यथा—

श्रवणां सांभळ साद, आयल जो आवत नहीं ।
मो 'पीथल' मरजाद, रहती किण विध राजिया ।।

(पृथ्वीराज राठौड़)

इसी प्रकार सांचोर के नइयड़ क्षेत्र का चौहान राजोधर (जसराज का पुत्र) विवाह के लिए उमरकोट गया, तो वहाँ गाँव धारोड़ा (उमरकोट के निकट) निवासी प्रसिद्ध कवि सूजा देथा ने उसके शौर्य एवं औदार्य सम्बन्धी कई सोरठे सुनाये, जिनमें राजोधर के लिए राजिया शब्द कहा है । उदाहरणार्थ दो प्राचीन सोरठे प्रस्तुत हैं :

असणां कर पूळाह, ऐधूळा जिम उडाड़िया ।
नरहर नाड़ूळाह, रेखां राखण राजिया ।।
हारघो वार हजार, हीलो जात हीगोळ रा ।
तें सांमी तरवार, राव न झालै राजिया ।।

(सूजा देथा)

कृपारामजी कृत राजिया के सोरठों की रचना के लगभग सौ वर्ष पश्चात् 'पत्रप्रभाकर' ग्रन्थ के रचयिता और राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि फतहकरणजी उज्ज्वल (स. 1909-1978 वि.) ने राजिया को सम्बोधित कर कई सोरठे रचे, जिनमें राष्ट्र के लिए एकता, श्रम की महत्ता और विशेष अवस्था के सुधार रूप पर बल दिया गया है । यथा—

मिनखां पणां न मांन, मांन हुवै हेकण मतां ।
जीतो जुध जापांन, कम तणं दळ राजिया ।।

सेवग साहळ सुरणी सचाळी । ताय मिळी मुझ एकरण ताळी।
'पीयल' वाहर काढ्ढ पंचाळी । धाइयो चारण धावळियाळी ॥

ऐसी मान्यता है, कि काढेली महाशक्ति राजबाई वहाँ आई और उसने अपने दिव्य प्रभाव से पृथ्वीराज राठौड़ की लाज-मर्यादा सुरक्षित रखी। इस घटना के उपलक्ष्य मे आभार प्रकट करते हुए पृथ्वीराज ने एक सोरठा कहा था, जिसमें देवी राजबाई के लिए 'राजिया' शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा—

श्रवणां सांभळ साद, आयल जो आवत नहीं।
मो 'पीयल' मरजाद, रहती किण विध राजिया ॥

(पृथ्वीराज राठौड़)

इसी प्रकार सांचोर के नइयड क्षेत्र का चौहान राजोधर (जसराज का पुत्र) विवाह के लिए उमरकोट गया, तो वहाँ गाँव खारोड़ा (उमरकोट के निकट) निवासी प्रसिद्ध कवि सूजा देथा ने उसके शौर्य एवं औदार्य सम्बन्धी कई सोरठे सुनाये, जिनमें राजोधर के लिए राजिया शब्द कहा है। उदाहरणार्थ दो प्राचीन सोरठे प्रस्तुत हैं :

प्रसणां कर पूळाह, ऐधूळा जिम उडाड़िया ।
नरहर नाडूळाह, रेखां राखण राजिया ॥
हारचो वार हजार, हीलो जात हींगोळ रा ।
तैं सांमी तरवार, राव न झाले राजिया ॥ (सूजा देथा)

कृपारामजी कृत राजिया के सोरठों की रचना के लगभग सौ वर्ष पश्चात् 'पत्रप्रभाकर' ग्रन्थ के रचयिता और राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि फतहकरणजी उज्ज्वल (सं. 1909-1978 वि.) ने राजिया को सम्बोधित कर कई सोरठे रचे, जिनमें राष्ट्र के लिए एकता, इसम की महत्ता और वित्तीय व्यवस्था के सुचारु रूप पर बल दिया गया है। यथा—

मिनखां घणां न मांन, मांन हुवै हेकरण मतो।
जीतो जुध जापांन, रूस तणे दळ राजिया ॥

वाक्य-कौशल से प्रभावित होकर मनीषी डा. मनोहर शर्मा ने ये दोहे सर्पित किये :

कविवर किरपाराम रो, पुन पसरयो अणपार।
सदा सुरंगा सोरठा, सुरसत रो सिणगार ।।
रचना किरपाराम री, वाणी रो वरदान।
सुण कर सुगणा सोरठा, मूढ़ हुवै मतिमान ।।

यदि 'राजिया रा सोरठा' का प्रस्तुत संस्करण राजस्थानी के सुधी पाठकों और विद्यार्थियों के लिए यत्किंचित् उपयोगी सिद्ध हो सका, तो मैं अपना प्रयास सफल मानूंगा।

डा. शक्तिदान कविया
अध्यक्ष
राजस्थानी विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय
जोधपुर (राज.)
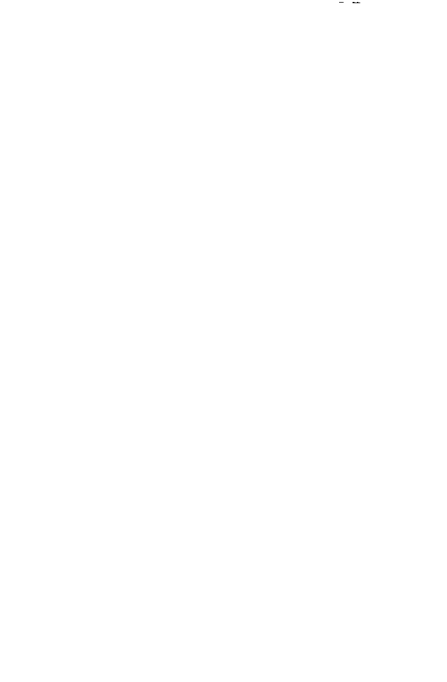
राजिया रा सोरठा

उद्दम करो अनेक, अथवा अनउद्दम करो ।
होणी निहचै हेक, राम करै सो राजिया ॥ 1 ॥

मनुष्य चाहे कितने ही उद्यम करे अथवा न करे, किन्तु, हे राजिया ! निश्चय ही होता वही है, जो ईश्वर करता है।

कुटळ निपट नाकार, नीच कपट छोडै नहीं ।
उतम करै उपकार, रूठा तूठा राजिया ॥ 2 ॥

कुटिल और नीच व्यक्ति अपनी कुटिलता एवं नीचता कभी नहीं छोड़ सकते, जब कि हे राजिया ! उत्तम कोटि के व्यक्ति चाहे रुष्ट हों अथवा तुष्ट, दूसरों का भला ही करेंगे।

पढवो वेद पुरांण, सोरो इण संसार में ।
वातां तणो विनांण, रहस दुहेलो राजिया ॥ 3 ॥

इस संसार में वेद-पुराण आदि शास्त्रों को पढ़ना तो आसान है, किन्तु, हे राजिया ! बात करने की विशिष्ट विद्या का रहस्य सीखना-समझना बहुत कठिन है।

कई लोग किसी की कीर्ति करने अथवा कहने (प्रण-यन अथवा प्रपाठ) से व्यर्थ ही जलने लगते हैं। ऐसे (अधम ईर्ष्यालु) व्यक्ति तो परमात्मा का भी किञ्चित् भय नहीं रखते।

चुगली ही सूं चून, ओर न गुण इण वासतै।
खोस लिया वेखून, गिगल उठावे राजिया ॥ 12 ॥

जिन लोगों के पास चुगली करने के अतिरिक्त जीविकोपार्जन का अन्य कोई गुण नहीं होता, ऐसे लोग ठिठोलियाँ करते-करते ही निरपराध लोगों की रोजी-रोटी छीन लेते हैं।

आछो मांन अमाव, मतहीणा केई मिनख।
पुटिया ज्यूं पाव, राखै ऊंचा राजिया ॥ 13 ॥

कई बुद्धिहीन व्यक्तियों को सम्मान मिल जाने पर वे उसे पचा नहीं सकते और उस अ-समाविष्ट स्थिति में अभिमान के कारण पुटिया पक्षी की तरह सदैव अपने पाँव ऊपर (आकाश) की ओर ही किये रहते हैं।

गुण अवगुण जिण गांव, सुणै न कोई सांभळै।
उण नगरीविच नांव, रोही आछो राजिया ॥ 14 ॥

जहाँ गुण और अवगुण का न तो भेद हो और न कोई ... वाला हो, ऐसी नगरी से तो निर्जन-वन ही अच्छा

कारज सरै न कोय, बळ प्राक्रम हिम्मत बिनां ।
हलकारयां को होय, रंगा स्याळां राजिया ॥ 15 ॥

बल, पराक्रम एवं हिम्मत के बिना कोई भी कार्य सफल नहीं होता । (साहसहीन) रंगे सियारों को ललकारने से भी क्या होता है ?

मिळे सींह वन मांह, किण मिरगां मृगपत कियौ ।
जोरावर अति जांह, रहै उरध गत राजिया ॥ 16 ॥

सिंह को वन में किन मृगों (जंगली जानवरों) ने (एकत्र होकर अपना स्वामी) मृगपति घोषित किया था । जो शक्तिशाली होता है, उसकी ऊर्ध्वगति (सब के ऊपर स्थिति) स्वतः हो जाती है ।

खळ घूंकळ कर खाय, हाथळ बळ मोताहळां ।
जो नाहर मर जाय, रज तृण भखै न राजिया ॥ 17 ॥

सिंह युद्ध में अपने हस्तबल (पंजों) से शत्रु हाथियों के मुक्ताफल-युक्त मस्तक विदीर्ण कर ही उन्हें खाता है । वह चाहे भूख से मर जाय, किन्तु घास (रज-तृण) कभी नहीं खायेगा ।

नभचर विहंग निरास, विन हिम्मत लाखां वहै ।
वाज ग्रपत कर वास, रजपूती सूं राजिया ॥ 18 ॥

आकाश में लाखों पक्षी हिम्मत के बिना (भूख के

मारे) उड़ते रहते हैं, किन्तु बाज अपने पराक्रम से पक्षियों का शिकार कर तृप्त जीवन व्यतीत करता है ।

घेर सबळ गजराज, केहर पळ गजकां करै ।
कोसठ करकम काज, रिगता ही रै राजिया ।। 19 ।।

सिंह बलवान हाथी को घेर कर और मार कर उसके मांस का आहार करता है, जब कि गीदड़ हड्डियों के ढांचे के लिए ही ललचाते रहते हैं ।

आछा जुध अणपार, धार खगां सनमुख धसै ।
भोगै हुय भरतार, रसा जिके नर राजिया ।। 20 ।।

जो लोग अनेक बड़े युद्धों में तलवारों की धारों के सम्मुख निर्भीक होकर बढ़ते हैं, वे ही वीर भरतार बन कर इस भूमि को भोगते हैं ।

दांम न होय उदास, मतळब गुण गाहक मिनख ।
ओखद री कड़वास, रोगी गिणै न राजिया ।। 21 ।।

गुणग्राहक मनुष्य अपनी लक्ष्य-सिद्धि के लिए (तन या धन) की कठिनाई से कभी निराश नहीं होता, ठीक उसी प्रकार जैसे रोगी व्यक्ति औषध के कड़वेपन की परवाह नहीं करता ।

गह भरियौ गजराज, मह पर वह आपह मतै ।
कूकरिया बेकाज, रुगड भुसै किम राजिया ।। 22 ।।

मस्त गजराज तो अपनी मरजी से पृथ्वी पर (सर्वत्र) विचरण करता है, किन्तु ये मूर्ख कुत्ते व्यर्थ ही उसे देख कर क्यों भौंकते हैं ?

असलों री औलाद, खून करयां न करै खता ।
वाहै वद वद वाद, रोढ दुलातां राजिया ।। 23 ।।

शुद्ध कुल में जन्म लेने वाला तो अपराध करने पर भी झगड़ा नहीं करता, जबकि अकुलीन व्यक्ति अकारण ही झगड़ता रहता है, जैसे खच्चर व्यर्थ ही बढ़-बढ़ कर दुलत्तियां झाड़ता है ।

इणही सूं अवदात, कहणी सोच विचार कर ।
वे मौसर री वात, रूड़ी लगै न राजिया ।। 24 ।।

इसीलिए सोच-समझ कर कही जाने वाली बात ही हितकारिणी होती है, क्योंकि बिना मौके कही गई बात किसी को भी अच्छी नहीं लगती ।

विन मतळव विन भेद, केई पटक्या रांम का ।
खोटी कहै निखेद, रांमत करता राजिया ।। 25 ।।

कई राम के मारे (दुष्ट) लोग ऐसे भी होते हैं, जो बिना मतलब और बिना विचार किये हँसी-ठिठोली में ही किसी को अप्रिय एवं अनुचित बातें कह देते हैं ।

पल पल में कर प्यार, पल पल में पलटै परा।
अं मतळब रा यार, रहै न छांना राजिया ।। 26 ।।

जो लोग पल-पल में प्यार (का प्रदर्शन) करते हैं और क्षण-क्षण में बदल भी जाते हैं, ऐसे मतलबी यार-दोस्त छिपे नहीं रह सकते।

सार तथा ग्रण सार, थेटू गळ बंधियो थको।
यडां सरम चो भार, राळयां सरै न राजिया ।। 27 ।।

परम्परा के रूप में जो भी सारयुक्त अथवा सारहीन तत्त्व हमारे गले बंध गया है, पूर्वजों की लाज-मर्यादा के उस भार को फेंकने से काम नहीं चलता (उसे तो निभाना ही पड़ता है)।

पहलो कियां उपाव, दव दुसमण आमय दटै।
प्रचंड हुआं विस वाव, रोभा घालै राजिया ।। 28 ।।

अग्नि, दुश्मन और रोग तो आरंभ में दबाने से दब सकते हैं। विष (शत्रुता एवं रोग) और वायु प्रचण्ड हो जाने पर सदा कष्ट ही देते हैं।

अेक जतन सत अेह, कूकर कुगंध कुमांणसां।
ड़ न लीजे छेह, रंवण दीजे राजिया ।। 29 ।।

कुत्ता, दुर्गंध और दुष्टजन से बचने का एकमात्र

उत्तम उपाय यही है, कि उन्हें छेड़ा नहीं जाय और ज्यों का त्यों पड़ा रहने दिया जाय।

मरां मरत परवांण, ज्यां ऊभां संकै जगत।
भोजन तपै न भांण, रावण मरतां राजिया॥ 30॥

मनुष्य की महिमा उसके नक्षत्र मे होती है, इसीलिए उसके जीते-जी संसार उससे भय खाता है। रावण जैसे प्रतापी की मृत्यु होते ही सूर्य ने उसके रसोईघर में तपना (भोजन बनाना) बन्द कर दिया था।

हीमत कीमत होय, बिन हीमत कीमत नहीं।
करै न आदर कोय, रद कागद ज्यूं राजिया॥ 31॥

हिम्मत से ही मनुष्य का मूल्यांकन होता है और पुरुषार्थहीन पुरुष का कोई महत्त्व नहीं। साहस से रहित व्यक्ति रद्दी कागज की भांति होता है, जिसका कोई आदर नहीं करता।

देखै नहीं कदास, नहचै कर नुकसाण नफो।
रोळां री इकलास, रौळ मचावै राजिया॥ 32॥

जो लोग हानि-लाभ की ओर कभी देखते ही नहीं ऐसे विचारहीन (गैर जिम्मेदार) लोगों के मेल-मिलाप अन्ततः उपद्रव (अथवा अशान्ति) ही पैदा करता है।

फूड़ा कूड़ प्रकास, प्रण हूती मेलै इसी ।
उड़ती रहै प्रकास, रजो न लागै राजिया ।। 33 ।।

झूठे लोग ऐसी अघटित बातों का मिथ्या प्रचार करते हैं, कि वे आकाश में ही उड़ती रहती हैं। धरती की रज तो उन्हें छू भी नहीं पाती ।

उपजायै अनुराग, कोयल मन हरखत करै ।
कड़वौ लागै काग, रसना रा गुण राजिया ।। 34 ।।

कोयल लोगों के मन में प्रेम उत्पन्न कर उन्हें आनन्दित करती है, जबकि कौवा सब को कड़वा लगता है । यह सब वाणी का ही परिणाम है ।

भली बुरी री भीत, नह आणै मनमें निखद ।
निलजी सदा नचीत, रहै सयांणा राजिया ।। 35 ।।

नीच व्यक्ति अपने मन में भली और बुरी बातों का तनिक भी भय नहीं लाते । वे निर्लज्ज तो सयाने बने हुए सदैव निश्चिन्त रहते हैं ।

ऐस अमल आरांम, सुख उछाह भेळा सयण ।
होका विनां हरांम, रँग रो हुवे न राजिया ।। 36 ।।

ऐश-आराम, अफीम-रस की मान-मनुहार और मित्र-ंडली के साथ आनन्द-उत्सव के समय, हे राजिया ! यदि

हुक्का नहीं हो, तो मजलिस में रंग नहीं जमता।
किसी कवि ने कहा है—

भर होका कर उम्मरां, मत कर धोखा मन्न।
पूरण वाळो पूरसी, अमल तमाखू अन्न ।।

कठण पड़ै जद कांम, हांम पकड़ गाढी रहै।
तौ ग्रलवत हो तांम, रांमभलो ह्वै राजिया ।। 37 ।।

कोई कठिन काम आ पड़ने पर यदि मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति को दृढ़ बनाये रखता है, तो निश्चय ही भगवान उसकी सहायता करता है।

मद विद्या धन मांन, ग्रोछा सो उकळै ग्रवट।
ग्राघण रै उनमांन, रहैक विरळा राजिया ।। 38 ।।

विद्या, धन और प्रतिष्ठा पाकर ओछे आदमी अभिमान में उछलने (उत्कलित होने) लग जाते हैं। आदहन (खिचड़ी आदि पकाने के लिए आग पर चढ़ा कर गर्म किया हुआ पानी) की भांति मर्यादा में यथावत् रहने वाले लोग तो विरले ही होते हैं।

पय मीठा कर पाक, जो इमरत सींचीजिये।
उर कड़वाई ग्राक, रंच न मूकै राजिया ।। 39 ।।

आक को भले ही मीठे दूध अथवा अमृत से ही सींचा जाय, किन्तु वह अपने अन्दर का कड़वापन किञ्चित् भी

नहीं छोड़ता। (इसी प्रकार चाहे कितना ही मधुर वर्ताव किया जाए, कुटिल व्यक्ति अपनी कुटिलता नहीं छोड़ेगा।)

तुरत बिगाड़ै तांह, पर गुण स्वाद स्वरूप नें।
मित्राही पय मांह, रिगल खटाई राजिया ॥ 40 ॥

जिस प्रकार दूध में खटाई पड़ने से उसके गुण, स्वाद और स्वरूप में विकृति आ जाती है, उसी प्रकार ठिठोलियों (मसखरियों) से मन फट कर मित्रता शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

सब देखै संसार, निपट करै गाहक निजर।
जांणै जांणणहार, रतनां पारख राजिया ॥ 41 ॥

यों तो सभी लोग ग्राहक की नजर से वस्तुओं को देखते ही हैं, किन्तु उनके गुण-दोष की सही पहचान प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता। रत्नों की परख तो केवल जौहरी ही जानता है।

मूरख टोळ तमांम, घसकां राळै अत घणी।
गतराड़ौ गुणग्रांम, रांडोल्यां मझ राजिया ॥ 42 ॥

मूर्खों की मंडली में ही मूढ़ व्यक्ति बहुत अधिक गप्पें हाँकता रहता है, जैसे रांडोल्यों में हिजड़ा भी गुणवान माना जाता है।

हुवै न बूझणहार, जांणै कुण कीमत जठै।
विन गाहक वौपार, खळ्चो गिणीजै राजिया ॥ 43 ॥

जहाँ पर कोई पूछने वाला भी न हो, वहाँ उस (व्यक्ति या वस्तु) का मूल्य कौन जानेगा ? निश्चय ही, विना ग्राहक का व्यापार चौपट हो जाता है। (गुणग्राहक के विना गुणवान की कद्र नहीं हो सकती।)

गुणी सपत सुर गाय, कियो किसब मूरख कनै।
जांणै रुनो जाय, रन रोहो में राजिया ॥ 44 ॥

गायक ने संगीत के सातों स्वरों में गाकर मूर्ख व्यक्ति के सामने अपनी कला का प्रदर्शन किया, किन्तु उसे ऐसा लगा, मानो वह सूने जंगल में जाकर रोया हो। (अ-रसिक एवं गुणहीन व्यक्ति के सम्मुख कलात्मक प्रदर्शन अरण्य-रोदन के समान होता है।)

साचो मित्र सचेत, कह्यो कांम न करै किसो।
हर अरजन रै हेत, रथ कर हाक्यो राजिया ॥ 45 ॥

जो सच्चा मित्र होता है, वह अपने मित्र के हितार्थ तत्परता से कौन-सा कार्य नहीं करता ? श्रीकृष्ण ने तो (अपने मित्र) अर्जुन के लिए (सारथी बन कर) अपने हाथों से रथ हाँका था।

रोटी चरखो रांम, इतरो मुतळब आपरो।
की डोकरियां कांम, राज कथा सूं राजिया ॥ 46 ॥

बुढ़ियाओं को तो रोटी, चरखा और राम-भजन, केवल इन्हीं से सरोकार है। उन्हें राजनीतिक चर्चाओं से भला क्या लेना-देना ?

जिण मारग औ जात, भूंडो हो अथवा भलो।
विसनी सूं सौ बात, रह्यो न जावै राजिया ॥ 47 ॥

व्यसनी पुरुष जिस मार्ग पर चलता है, चाहे वह वस्तु बुरी है अथवा भली, किसी भी स्थिति में उसे छोड़ नहीं सकता, यह सौ बातों की एक बात है।

अवनी रोग अनेक, ज्यांरो विध कीधो जतन।
इण परकत री एक, रची न ओखद राजिया ॥ 48 ॥

पृथ्वी पर अन्य कई रोग हैं, जिनके तो विधाता ने इलाज नाये हैं, किन्तु इस प्रकृति (स्वभाव) के इलाज की एक ो दवा उसने नहीं रची।

कारण कटक न कोध, सखरा चाहीजै सुपह।
लंक विकट गढ लीध, रींछ बांदरां राजिया ॥ 49 ॥

युद्ध में विजय के लिए बड़ी सेना की अपेक्षा कुशल तृत्व ही मुख्य कारण होता है। श्रेष्ठ स्वामी (या संचालक)

के कारण ही लंका जैसे अजेय दुर्ग को रींछ और वानरों ने जीत लिया था।

आवै नहीं इलोळ, बोलण चालण री विषय।
टोटोड़यां रा टोळ, राजहंस री राजिया॥ 50॥

महान् व्यक्तियों के साथ रहने मात्र से ही साधारण व्यक्तियों में उनकी महानता नही आ सकती। जैसे राजहंसों का संसर्ग पाकर भी टिटहरियो का झुण्ड हसों की-सी बोल-चाल नहीं सीख पाता।

दूध नोर मिळ दोय, हेक जिसी आक्रित हुवै।
करै न न्यारो कोय, राजहंस बिन राजिया॥ 51॥

दूध और पानी मिलने से दोनों की आकृति एक समान हो जाती है। फिर उनको अलग करने अर्थात् दूध का दूध और पानी का पानी करने (नीर-क्षीर-विवेक) की क्षमता तो राजहंस के अतिरिक्त अन्य किसी में भी नहीं होती। (न्याय करने में प्रतिभा, प्रज्ञा एवं पटुता तीनों की आवश्य-कता होती है।)

मिणधर विष अणमाव, मोटा नह धारै मगज।
वीछू पूछ बणाव, राखै सिर पर राजिया॥ 52॥

बड़े व्यक्ति कभी अभिमान नहीं किया करते। सांप में बहुत अधिक जहर होता है, फिर भी उसे घमण्ड नहीं होता,

जय कि विच्छू कम जहर होने पर भी अपनी पूँछ को (आडम्बर और अभिमान के साथ) सिर पर उठाये रखता है।

जगमें दीठो जोय, हेक प्रगट विवहार म्हे।
कांम न मोटो कोय, रोटी मोटो राजिया ॥ 53 ॥

प्रत्यक्ष व्यवहार में हमने तो इस संसार में यही देखा है, कि काम बड़ा नहीं होता, रोटी बड़ी होती है। सारी भागदौड़ ही एक जीविका के लिए होती है।

विविध वणाय वणाय, जुगत घणी रचियो जगत।
कोधो वसत न काय, रुपिया सिरखी राजिया ॥ 54 ॥

विधाता ने विविध प्रकार की अनेक युक्तियों से इस संसार में नाना भाँति की वस्तुएँ रची हैं, किन्तु रुपये जैसी अन्य कोई वस्तु नहीं बनाई। (रुपये से संसार में सब काम सहज ही हो जाते हैं।)

कहणी जाय निकांम, आछोड़ी आंणी उकत।
दांमां लोभी दांम, रँजे न वातां राजिया ॥ 55 ॥

अच्छी-अच्छी उक्तियों के साथ कही गई सभी बातें लोभी व्यक्ति के लिए तो निरर्थक है।-सच है, दामों का लोभी दाम से ही प्रसन्न होता है, बातों से नहीं।

करण मुक्ता धन कोस, भरियो पिण प्रापत बिना ।
दीजै कासूं दोस, रैणायर नैं राजिया ।। 56 ।।

समुद्र के तल में तो रत्नों और मोतियों का कोष विद्यमान है, किन्तु भाग्य के बिना वह किसी को प्राप्त नहीं होता, तो इसमें रत्नाकर (सागर) को क्यों दोष दिया जाय ?

हुन्नर करौ हजार, सणप चतुराई सहत ।
हेत कपट विवहार, रहै न छांना राजिया ।। 57 ।।

चाहे हजारों तरह की चालाकी और चतुराई क्यों न की जाय, किन्तु प्रेम और कपट का व्यवहार छिपा नहीं रहता । (हृदय के भाव और ऊपरी बनाव में अन्तर छिपा नही रहेगा ।)

लह पूजा गुण लार, नह आडंबर सूं निपट ।
सिव बंदै संसार, राख लगायां राजिया ।। 58 ।।

गुण के पीछे पूजा होती है, न कि आडम्बर से । भस्मी लगाये रहने पर भी शिव की वन्दना सारा संसार करता है ।

लछमी कर हरि लार, हर नै दघ दीधौ जहर ।
आडंबर इधकार, राखै सारा राजिया ।। 59 ।।

समुद्र ने लक्ष्मी तो विष्णु को दी और, जहर महादेव को दिया । सच है, आडम्बर का विशेष लिहाज सभी रखते हैं ।

सो मूरख संसार, कपट जिणां आगळ करै।
हरि सह जांणणहार, रोम रोम री राजिया ।। 60 ।।

संसार में वे व्यक्ति मूर्ख हैं, जो भगवान् के सामने कपट-व्यवहार करते हैं, जो कि रोम-रोम की सब बातें जानने वाला (सर्वान्तरयामी) है।

ओरूं अकल उपाय, कर आछो मूंडो न कर।
जग सह चाल्यो जाय, रेला की ज्यूं राजिया ।। 61 ।।

और भी बुद्धि लगाकर भला करने का उपाय करो, किसी का बुरा मत करो। यह संसार तो पानी के रेले की तरह निरन्तर बहता चला जा रहा है। (क्षणभंगुर जीवन की सार्थकता सत्कर्मों से ही है।)

ओसर पाय अनेक, भावै कर मूंडो भलो।
अंत समै गत अेक, राव रंक री राजिया ।। 62 ।।

जीवन में अनेक अवसर पाकर मनुष्य चाहे तो भलाई करे, चाहे बुराई, किन्तु अन्त में तो सब की एक ही गति होती है। मृत्यु, चाहे राजा हो अथवा रंक।

लूंबयां करै न लोप, वन केहर उनमत वसै।
करै न सबळा कोप, रंकां ऊपर राजिया ।। 63 ।।

जंगल में उन्मत्त शेर बसता है, किन्तु वह लोमड़ियों

का समूल नाश नहीं करता, क्योंकि शक्तिशाली कभी गरीबों पर कोप नहीं करते।

पहली हुवै न पाव, कोड़ मणां जिण में करै।
सुरतर तणो सुभाव, रंक न जांणै राजिया ॥ 64 ॥

जहां पहले पाव भर अनाज भी नहीं होता, वहां करोड़ों मन कर देता है। कल्पवृक्ष के स्वभाव को रंक व्यक्ति नहीं जान सकता। (उदारता एवं दयालुता तो स्वाभाविक गुण होते हैं।)

पाळ तणी परचार, कीधो आगम काम रो।
बरसंतां घण धार, रुकै न पांणी राजिया ॥ 65 ॥

पानी को रोकने के लिए पाल बांधने का प्रबन्ध भी अग्रिम ही लाभदायक होता है। घने बरसते पानी को रोकना सम्भव नहीं, यह कार्य तो पहले ही होना आवश्यक है। (राजस्थानी कहावत है—'पाणी पहली पाळ'।)

कांम न आवै कोय, करम धरम लिखिया किता।
पालो हींग पसोय, रका विचाळै राजिया ॥ 66 ॥

जिसमें लिखी हुई कर्म-धर्म की बातें (समाचार) यदि कुछ काम नहीं आती, तो उस रुक्के में भले ही हींग की पुड़ियां बांधो, क्योंकि वह तो रद्दी कागज के समान है।

सो मूरख संसार, कपट जिणां आगळ करै।
हरि सह जांणणहार, रोम रोम री राजिया ॥ 60 ॥

संसार में वे व्यक्ति मूर्ख हैं, जो भगवान् के सामने कपट-व्यवहार करते हैं, जो कि रोम-रोम की सब बातें जानने वाला (सर्वान्तरयामी) है।

औरूं अकल उपाय, कर आछो भूंडो न कर।
जग सह चाल्यो जाय, रेला की ज्यूं राजिया ॥ 61 ॥

और भी बुद्धि लगाकर भला करने का उपाय करो, किसी का बुरा मत करो। यह संसार तो पानी के रेले की तरह निरन्तर बहता चला जा रहा है। (क्षणभंगुर जीवन की सार्थकता सत्कर्मों से ही है।)

औसर पाय अनेक, भावै कर भूंडी भली।
अंत समै गत अेक, राव रंक री राजिया ॥ 62 ॥

जीवन में अनेक अवसर पाकर मनुष्य चाहे तो भलाई करे, चाहे बुराई, किन्तु अन्त में तो सब की एक ही गति होती है। मृत्यु, चाहे राजा हो अथवा रंक।

लूंबयां करै न लोप, वन केहर उनमत वसै।
करै न सबळा कोप, रंकां ऊपर राजिया ॥ 63 ॥

जंगल में उन्मत्त शेर बसता है, किन्तु वह लोमड़ियों

का समूल नाश नहीं करता, क्योंकि शक्तिशाली कभी गरीबों पर कोप नहीं करते।

पहली हुवै न पाव, कोड़ मणां जिण में करै।
सुरतर तणौ सुभाव, रंक न जांणै राजिया ॥ 64 ॥

जहाँ पहले पाव भर अनाज भी नहीं होता, वहाँ करोड़ों मन कर देता है। कल्पवृक्ष के स्वभाव को रंक व्यक्ति नहीं जान सकता। (उदारता एवं दयालुता तो स्वाभाविक गुण होते हैं।)

पाळ तणौ परवार, कीधौ आगम कांम रौ।
बरसंतां घण धार, रुकै न पांणी राजिया ॥ 65 ॥

पानी को रोकने के लिए पाल बाँधने का प्रबन्ध तो अग्रिम ही लाभदायक होता है। घने बरसते पानी को रोकना सम्भव नहीं, यह कार्य तो पहले ही होना आवश्यक है। (राजस्थानी कहावत है—'पाणी पहली पाळ'।)

कांम न आवै कोय, करम धरम लिखिया किया।
पालो हींग पलोय, रका विचाळै राजिया ॥ 66 ॥

जिसमे लिखी हुई कर्म-धर्म की बातें (समाचार) यदि कुछ काम नहीं आती, तो उस रक्के में भले ही हींग की पुड़ियाँ बाँधो, क्योंकि वह तो रद्दी कागज के समान है।

भाड जोप भल मेक, वारज में भेळा वसै।
इसको भंवरो एक, रस को जांणे राजिया ।। 67 ।।

बड़ा मेंढक, जोंक मछली और दादुर सभी जल में कमल के अन्दर ही रहते हैं, किन्तु कमल के रस का महत्त्व तो केवल रसिक भ्रमर ही जानता है। (गुण को गुणग्राही और रस को रसज्ञ ही जान सकता है।)

मांनै कर निज मीच, पर संपत देखे अपत।
निपट दुखी ह्वै नीच, रीसां बळ बळ राजिया ।। 68 ।।

नीच व्यक्ति जब दूसरे की सम्पत्ति को देखता है, तो उसे अपनी मृत्यु समझता है, इसलिए ऐसा निकृष्ट व्यक्ति मन में जल-जल कर बहुत दुःखी होता है।

खूंद गधेड़ा खाय, पैलां री बाड़ी पड़ै।
आ अणजुगती आय, रड़कै चित में राजिया ।। 69 ।।

यदि परायी बाड़ी में भी गधे घुस कर उसे खूंदते (रौंदते) हुए खाने लगें, तो यह अयुक्त बात है, इसलिए मन में खटकती अवश्य है।

'समन' का यह दोहा भी पठनीय है—

समन पराये बाग में, दाख तोड़ खर खाय।
अपणा कछु बिगड़त नहीं, असही सही न जाय ।।

नारी दास ग्रनाथ, पण मार्य चाढयां पछै।
हिय ऊपरलो हाय, राळ्यो जाय न राजिया ।। 70 ।।

नारी ग्रौर दास ग्रनाथ (दीन) होते हैं (इसलिए इन दोनों को स्वामी की ग्रावश्यकता होती है) किन्तु एक वार शिर पर चढ़ा लेने से ये छाती-ऊपर का हाथ वन जाते हैं, जिसे हटाना ग्रासान नहीं होता।

हियं मूढ जो होय, की संगत ज्यांरी करै।
काळा ऊपर कोय, रंग न लागै राजिया ।। 71 ।।

जो व्यक्ति जन्मजात मूर्ख होते हैं, उन पर सत् संगति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जैसे काले रंग पर ग्रन्य कोई रंग नहीं चढ़ता।

मलियागिर मंझार, हर को तर चंनण हुवै।
संगत लियं सुधार, रूखां ही नै राजिया ।। 72 ।।

मलयागिरि पर प्रत्येक पेड़ चन्दन हो जाता है, यह ग्रच्छी संगति का ही प्रभाव है, जो वृक्षों तक को सुधार देता है।

पिंड लछण पहचाण, प्रीत हेत कीजै पछै।
जगत कहै सो जांण, रेखा पाहण राजिया ।। 73 ।।

किसी व्यक्ति से प्रेम एवं घनिष्ठता स्थापित करने से पहले उसके व्यक्तित्व (कुलीन-ग्रकुलीन) सम्बन्धी पूरी

जानकारी कर लेनी चाहिए। यह लोक-मान्यता पत्थर पर खिंची लकीर की भांति रही है।

ऊंचै गिरवर आग, जळती सह देखै जगत।
पर जळती निज पाग, रती न दीसै राजिया ॥ 74 ॥

ऊँचे पहाड़ पर लगी हुई आग को तो संसार देखता है, परन्तु अपने सिर पर जलती हुई पगड़ी दिखाई नहीं देती। (दूसरों के दोष देखना आसान है, किन्तु अपनी गलती नहीं दीखती।)

यह सोरठा इस प्रकार भी मिलता है, जो ठीक जान पड़ता है—

लागै डूंगर लाय, जोवै तद सारो जगत।
प्राजळती निज पाय, रती न सूझै राजिया ॥

राजस्थानी कहावत है—
'डूंगर बळती दीसै, पण पगे बळती दीसै कोयनीं।'

सीतापति सब जांण, कांई अत वीना करो।
मह सीतळा मलांण, रासभ दीनो राजिया ॥ 75 ॥

भगवान सर्वज्ञ है, उनके प्रति शंका या आलोचना कैसी ! पात्रता के अनुरूप प्राप्तव्य की दृष्टि से ही तो उन्होंने शीतला को गर्दभ की सवारी प्रदान की है।

हर कोइ जोड़ै हाथ, कांमण सूं ग्रनमो किसा ।
नम्या त्रिलोकी नाथ, राधा आगळ राजिया ।। 76 ।।

सभी लोग उसे हाथ जोड़ते हैं, अतः स्त्री के सम्मुख न झुकने वाला व्यक्ति भला कौन हो सकता है ? जब तीन लोक के स्वामी श्रीकृष्ण भी राधा के आगे झुकते थे, तो साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है ?

सुण प्रस्ताव सुभाय, मनसूं यूं भिड़कै मुगध ।
ज्यूं पूरबियो जाय, रत्ती दिखायां राजिया ।। 77 ।।

मुग्धा (काम-चेष्टा रहित युवा स्त्री) नायिका रति-प्रस्ताव सुन कर इस प्रकार चौंक कर भागने लगती है, जैसे चिरमी (गुंजा) दिखाने पर रंगास्वामी ।

टिप्पणी : पूर्वी क्षेत्र के रंगास्वामी लाल वस्त्र पहनते हैं और चिरमी भी लाल रंग की होती है, किन्तु उसका मुंह काला होता है ।

जिण बिन रह्यो न जाय, हेक घड़ी अळगो हुवां ।
दोस करै बिण दाय, रीस न कीजे राजिया ।। 78 ।।

जिस व्यक्ति के घड़ी भर अलग होने पर भी रहा नहीं जाए, ऐसा ममत्व वाला व्यक्ति यदि कोई गलती भी करे, तो उसका बुरा नहीं मानना चाहिए ।

टिप्पणी : राजस्थानी में कहावत है—

'दूधाळ री तो लात ई खिमै ।'

सुभाव, महफिलां रा गाहड़ करै ।
इसड़ा तो उमराव, रोट्यां मुंहगा राजिया ॥ 79 ॥

जिन लोगों का युद्ध में तो गीदड़ का-सा (कायर) स्वभाव हो किन्तु (अफीम-रस की मनुहार आदि) महफिलों गोष्ठियों में अपनी बहादुरी की बातें करें, ऐसे सरदार तो (बिना वेतन) रोटियों के बदले भी महंगे पड़ते हैं ।

कही न मानै काय, जुगती अणजुगती जगत ।
स्याणां नें सुख पाय, रहणो चुप हुय राजिया ॥ 80 ॥

जहाँ लोग कही गई उचित-अनुचित बात को मानते ही न हों, वहाँ समझदार व्यक्ति को चुप ही रहना चाहिए, इसी में सार है ।

पाटा पीड़ उपाव, तन लागां तरवारियां ।
वहै जीभ रा घाव, रती न ओखद राजिया ॥ 81 ॥

शरीर पर तलवार से लगे घावों की पीड़ा का तो मरहमपट्टी आदि से इलाज हो जाता है, किन्तु जिह्वा के द्वारा (कटु वचनों से) किये गये घावों की रत्ती भर कोई औषधि नहीं ।

टिप्पणी : कविराजा बांकीदास के शब्दों में—
बस राखौ जीभ कहै इम बांको, कड़वा बोल्यां प्रभत किसी ।
लोह तणी तरवार न लागै, जीभ तणी तरवार जिसी ॥

नहचै रहो निसंक, मत कीजै चळ विचळ मन ।
ऐ विधना रा अंक, राई घटै न राजिया ।। 82 ।।

निश्चयपूर्वक निःशंक रहो और मन को चल-विचल मत करो, क्यों कि विधाता ने जो भाग्य में अंक लिख दिये हैं वे राई भर भी नहीं घटेंगे ।

सुघहीणा सिरदार, मतहीणा मानै मिनख ।
अस आंधो असवार, रांम रुखाळो राजिया ।। 83 ।।

जो सरदार स्वयं तो सुध-बुध खोये हुए होते हैं और बुद्धिहीनों को अपना विश्वस्त बनाते हैं; अंधे घोड़े और अंधे सवार की भाँति ऐसे लोगों का तो भगवान ही रक्षक है ।

भावै नहींज भात, विंजण लगै विडावणा ।
रीरावै दिन रात, रोट्यां वदळै राजिया ।। 84 ।।

जिन लोगों को कभी भात अच्छा नहीं लगता और मधुर व्यंजन भी अरुचिकर लगते हैं, वे ही लोग समय के फेर से रोटियों के लिए दिन-रात गिड़गिड़ाने लगते हैं ।

कूड़ा निलज कपूत, हियाफूट ढांढ़ा असल ।
इसड़ा पूत अऊत, रांड जिणै क्यूं राजिया ।। 85 ।।

जो झूठे हैं, निर्लज्ज हैं, जिनकी हृदय की आँखें फूटी

हुई हैं और जो वस्तुतः पशु-सदृश हैं, ऐसे अपुत्रवत् कुपुत्र को कोई स्त्री जन्म ही क्यों देती है ? (ऐसी स्त्री निंद्य है।)

चाले जठै चलंत, अण चलियां आवै नहीं।
दुनियां में दरसंत, रीस सु लोचन राजिया।। 86 ।।

जहाँ क्रोध चलता है, वहीं पर क्रोध आता है। जहाँ क्रोध का वश न चले, वहाँ आता ही नहीं। ऐसा लगता है मानो क्रोध के सुनेत्र हैं, जो वस्तु-स्थिति को सहज ही भाँप लेते हैं।

सबळा संपट पाट, करता नह राखै कसर।
निबळां एक निराट, राज तणो बळ राजिया।। 87 ।।

बलवान व्यक्ति लोगों में उत्पात एवं उखाड़-पछाड़ करने में कोई कसर नहीं रखते, अतः निर्बलों के लिए तो एकमात्र राज्य (सरकार) का ही बल (संरक्षण) होता है।

प्रभुता मेरु प्रमांण, आप रहै रजकण इसा।
जिके पुरुष धन जांण, रविमंडळ विच राजिया।। 88 ।।

जिनकी प्रभुता तो पर्वत-सदृश महान् है, किन्तु जो स्वयं को रज-कण के समान तुच्छ समझते हैं, वे ही पुरुष संसार में धन्य हैं।

लावां तीतर लार, हर कोई हाका करै।
सीहां तणी सिकार, रमणी मुसकल राजिया।। 89 ।।

लावा और तीतर जैसे पक्षियों के पीछे तो हर कोई व्यक्ति हो-हल्ला करता हुआ धावा बोल देता है, किन्तु सिंहों को शिकार खेलना बहुत मुश्किल है। (शक्तिशाली से टक्कर लेना खतरे से खाली नहीं होता।)

मतळब री मनवार, नैत जिमावै चूरमा।
विन मतळब मनवार, राब न पावै राजिया ॥ 90 ॥

अपना मतलब सिद्ध करने के लिए तो लोग न्यौता देकर मनुहार के साथ चूरमा (मधुर व्यंजन) खिलाते हैं, किन्तु बिना मतलब के राबड़ी भी नहीं पिलाते।

मूसा नै मंजार, हित कर बैठा हेकठा।
सह जांणै संसार, रस नह रहसी राजिया ॥ 91 ॥

चूहा और बिल्ली प्रेम का दिखावा कर भले ही एक जगह बैठे हों, किन्तु सारी दुनियां जानती है कि इनका यह प्रेम-भाव स्थायी नहीं रहेगा। (जन्मजात विरोधी प्रकृति वालों में कभी सच्चा प्रेम नहीं हो सकता।)

मन सूं झगड़ै मोर, पैलां सूं झगड़ै पछै।
त्यांरा घटै न तोर, राज कचेड़ी राजिया ॥ 92 ॥

जो लोग तर्क-वितर्क द्वारा पहले अपने मन से झगड़ लेते हैं और बाद में दूसरों से झगड़ा करते हैं, उनका रुतबा राज्य की कचहरी में भी घटता नहीं।

उक्ति प्रसिद्ध है—

'विना विचारे जो करै, सो पाछै पछताय।'

सांम घरम घर साच, चाकर जेही चालसी।
ऊंनी ज्यांनै आंच, रतो न आवै राजिया॥ 93॥

जो सेवक स्वामिभक्ति एवं सत्य को धारण किये रहेंगे, उनके ऊपर रत्ती भर भी कभी विपत्ति की आंच नहीं आयेगी।

वंध वंध्या छुड़वाय, कारज मनचींत्या करै।
कहो चीज है काय, रुपिया सरखी राजिया॥ 94॥

जो कारागृह के वन्धन से मनुष्य को छुड़वा देता है और मनचाहे कार्य सम्पन्न करवा देता है, भला इस रुपये के समान अन्य कौन-सी वस्तु हो सकती है?

चोर चुगल वाचाळ, ज्यांरी मांनीजे नहीं।
संपड़ावै घसकाळ, रीती नाड्यां राजिया॥ 95॥

चोर, चुगल और गप्पी व्यक्तियों की बातों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए, क्यों कि ये लोग प्रायः रिक्त तलाइयों में ही नहला देते हैं, अर्थात् थोथी बातों से ही भ्रमित कर देते हैं।

जणही सूं जड़ियोह, मद गाडो करि माढवा।
पारस खुल पड़ियोह, रोयां मिळै न राजिया॥ 96॥

जिस मनुष्य के साथ घनिष्ट प्रेम हो जाता है, तो उसके निर्वाह में सदैव सजग रहना चाहिए, अन्यथा जैसे बंधा हुआ पारस खुल पड़ने पर रोने से फिर नहीं मिलता, वैसे ही खोयी हुई अन्तरंग मैत्री पुनः प्राप्त नहीं होती।

खळ गुळ अरण खूंताय, एक भाव कर आदरै।
ते नगरी हूंताय, रोही आछी राजिया ।। 97 ।।

जहाँ खली एवं गुड़ दोनों का एक ही मूल्य हो और गुण-अवगुण के आधार पर निर्णय न होता हो, उस नगरी से तो निर्जन जगल ही अच्छा है।

भिड़ियो घर भाराय, गढ़ड़ी कर राखै गढ़ां।
ज्यूं काळो सिर जात, रांक न छाई राजिया ।। 98 ।।

जब धरती के लिए युद्ध होता है, तो शूरवीर अपनी छोटी-सी गढ़ी (निवास-स्थान) को भी गढ़ के समान महत्त्व देकर उसकी रक्षा करता है, जैसे काले नाग के शिर पर जाने की कोई कोशिश करेगा, तो वह कभी गरीबी नहीं दिखायेगा, बल्कि फन उठायेगा। [अपने घर और ठिकाने की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है।]

औगुणगारा और, दुखदाई सारी दुनी।
घोदू चाकर चोर, रांधै छाती राजिया ।। 99 ।।

जो सेवक दब्बू और चोर हो, उसके अनुसार तो अन्य

लोग ही बुरे हैं और सारी दुनियाँ दुख देने वाली है। ऐसा सेवक तो सदैव अपने स्वामी का जी जलाता रहता है।

बांका पणो विसाळ, बसको सूं घण वेसनै।
बीज तणो ससि बाळ, रसा प्रमांणो राजिया ॥ 100 ॥

संसार में बांकेपन की महानता मानी जाती है, क्योंकि वह किसी के वश में नहीं होता। जिस प्रकार द्वितीया के चंद्रमा को देख कर सारी पृथ्वी नमन करती है (और उसे ग्रहण भी नहीं लगता), सो वह उसके बांकपन का प्रभाव है।

राव रंक धन रोर, सूरवीर गुणवांन सठ।
जात तणो नह जोर, रात तणो गुण राजिया ॥ 101 ॥

राजा और रंक, धन और दारिद्रय, शूरवीर, गुणी एवं मूर्ख—इन बातों के लिए किसी 'जात' (जाति) का नहीं, बल्कि उस रात का कारण होता है, जिस नक्षत्र या घड़ी में उस मनुष्य का जन्म होता है। अर्थात् जन्मजात गुण किसी जाति की नहीं, अपितु प्रकृति की देन है।

वसुधा बळ ब्योपाय, जोयो सह कर कर जुगत।
जात सभाव न जाय, रोक्यां धोक्यां राजिया ॥ 102 ॥

इस पृथ्वी पर बल-प्रयोग और अन्य सब युक्तियों के द्वारा परीक्षण करने पर भी यही निष्कर्ष निकला कि जाति

विशेष का स्वभाव कभी मिटता नहीं, चाहे अवरोध किया जाए, चाहे अनुरोध किया जाए ।

अरहट कूप तमांम, ऊमर लग न हुवै इतो ।
जळहर एको जाम, रेलै सब जग राजिया ।। 103 ।।

कुएँ का अरहट अपनी पूरी उम्र तक पानी निकाल कर भी उतनी भूमि सिंचित नहीं कर सकता, जितनी बादल एक ही पहर में जल-प्लावित कर देता है ।

नां नारी नां नाह, अध बिचला दीसै अपत ।
कारज सरै न काह, रांडोलां सूं राजिया ।। 104 ।।

जो लोग न तो पुरुष दिखाई देते हैं और न नारी, बीच की श्रेणी के ऐसे अप्रतिष्ठित जनानिये लोगो से कोई भी काम पार नहीं पड़ता ।

आहव में आचार, वेळा मन आघो वधं ।
समझै कीरत सार, रंग छै ज्यांनै राजिया ।। 105 ।।

युद्ध और दानवीरता की वेला में जिनका मन उत्साह से आगे बढ़ता है और जो कीर्ति को ही जीवन का सार समझते हैं, वे लोग वास्तव में धन्य हैं और वंद्य हैं ।

विष कषाय अनखाय, मोह पाय अळसाय मति ।
जनम अकारथ जाय, रांम भजन बिन राजिया ।। 106 ।।

विषय-वासनाओं में रत रहते हुए इस मानव देह को पा कर [illegible]। वह मानव-जन्म ईश्वर-भजन के बिना व्यर्थ ही खोता जा रहा है।

जिण तिण रो मुख जोय, निरथं दुख कहणो नहीं।
काढ़ न दे धन कोय, रोयां सूं राजिया॥ 107॥

हर किसी का मुँह देख कर निरर्थक ही अपना दुःख नहीं कहना चाहिए, क्यों कि गिड़गिड़ाने से कोई भी व्यक्ति धन निकाल कर नहीं दे देता।

जका जठी किम जाय, का रोज्या हूंता हुआ।
ऐ मृग सिरदे जाय, रीझ न जाणै राजिया॥ 108॥

'वीर भोग्या वसुन्धरा' सूत्र के अनुसार भूमि रूपी भार्या शूरवीरों को धाय्या छोड़ कर अन्यत्र सहज ही कैसे जा सकती है, क्यों कि वे मस्ताने तो मृगों की तरह रीझना नहीं जानते, बल्कि सिर देना जानते हैं।

रिगल तणो दिन रात, थळ करतां सायब थको।
जाय पड्यो तज जात, राजथियां मुख राजिया॥ 109॥

रात-दिन स्वामी के विनोद की स्थिति बनाते-बनाते थक गया और अपने जाति-स्वभाव को भी छोड़ दिया, क्यों कि वह राजश्री लोगों (रईसों) के घेरे में जा पड़ा। [दरबारी सेवक की विवश दशा का चित्रण है।]

नारी नहीं निघात, चाहीजे भेदग चतुर ।
बातां ही में बात, रीज खीज में राजिया ।। 110 ।।

किसी का भेद जानने के लिए नारी नहीं, बल्कि चतुर कूटनीतिज्ञ चाहिए, जो बातों ही बातों में व्यक्ति को रिझा कर अथवा खिझा कर रहस्य ज्ञात कर सके । (यहां राजनीतिक रहस्य उगलवाने का प्रसंग सकेतित है ।)

क्यों न भजे करतार, साचे मन करणी सहत ।
सारो ही संसार, रचना झूठी राजिया ।। 111 ।।

मनुष्य सच्चे मन और कर्म से परमात्मा का भजन क्यों नही करता ? यह सारा संसार तो मिथ्या सृष्टि है, सत्य तो एकमात्र ईश्वर है । (ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या)

घण घण सावळ धाय, नह फूटै पाहड़ निवड़ ।
जड़ कोमळ भिद जाय, राय पड़ै जद राजिया ।। 112 ।।

जो पहाड़ हथौड़ो के घने प्रहारों से भी नहीं टूटता उसी में छोटी दरार पड़ जाने पर वृक्ष की कोमल जड़ उसे भेद देती है (अर्थात् फूट पड़ने से तुच्छ शत्रु भी घात करने मे सफल हो जाता है) ।

जगत करै जिमणार, स्वारथ रै ऊपर सको ।
पुन रो पळ प्रणपार, रोटो नह दै राजिया ।। 113 ।।

संसार में स्वार्थ की भावना से तो लोग जाति-भोज और प्रीति-भोज के आयोजन कर देते हैं, किन्तु कुछ महान उपकारक होने पर भी उस भावना से किसी भूखे को रोटी तक नहीं दी जाती है (धर्म के नाम पर स्वार्थ-सिद्धि और बाह्य आडम्बर का ही बोलबाला है)।

हित चित प्रीत हुलास, महक मनेरं माड़वा।
करै विधाता नास, रंगां वाळा राजिया॥ 114॥

विधाता भी कभी-कभी मूर्ख स्त्रियों जैसे कार्य कर बैठता है। वह संसार में प्रेम, प्रसन्नता और रागरंग की मदभरी महक के दौर में ही सहसा उस मनुष्य को मिटा देता है।

यथा—

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुष रत्नमलंकरणं भुविः
तदपि तत्क्षण भंगि करोति चेदहह कष्टमपंडिततां विधेः।

(भर्तृहरि)

स्याळां संगति पाय, करक चंचेड़ै केहरी।
हाय कुसंगत हाय, रीस न आवै राजिया॥ 115॥

गीदड़ों की संगति पाकर सिंह भी सूखी हड्डियां चबाने लगा है। हाय री, कुसंगति! उसे तो अपने किये पर क्रोध भी नहीं आ रहा।

धांन नहीं ज्यां धूळ, जीमण वखत जिमाड़िये ।
मांहि अंस नहि मूळ, रजपूती रो राजिया ।। 116 ।।

जिन लोगों में क्षात्रवट के संस्कारों का लवलेश ही नहीं है, उन्हें भोजन के समय जो अनाज खिलाया जाता है, वह अन्न नहीं धूल के समान है ।

के जहुरी कविराज, नग मांणस परखै नहीं ।
काच कृपण बेकाज, रळिया सेवै राजिया ।। 117 ।।

कई जौहरी नगीनों को और कई कवि गुणग्राहक मनुष्यों को परख नहीं सकते, इसीलिए वे क्रमशः कांच और कृपण की निष्फल सेवा कर अन्त में पछताते हैं ।

आछा हुवै उमराव, हियाफूट ठाकुर हुवै ।
जड़िया लोह जड़ाव, रतन न फावै राजिया ।। 118 ।।

जहां उमराव तो अच्छे हों किन्तु उनके सहयोगी ठाकुर मूर्ख हों, तो वे उसी प्रकार अशोभनीय लगते हैं जैसे रत्न जड़ित लोहा ।

खाग तणै बळ खाय, सिर साटा रो सूरमा ।
ज्यांरो हक रह जाय, रांम न भावै राजिया ।। 119 ।।

जो शूरवीर अपने खड्ग के बल पर और शीश की

म्राछोड़ां ढिग म्राय, म्राछोड़ा भेळा हुवै।
ज्यूं सागर में जाय, रळै नदी जळ राजिया ।। 123 ।।

सज्जनों के पास सज्जनों का समागम इस प्रकार सहज ही हो जाता है, जैसे नदी का जल स्वत: सागर में जा मिलता है।

म्ररवां खरवां म्राय, सुदतारां विलसै सदा।
सूमां चलै न साथ, राई जितरी राजिया ।। 124 ।।

दानवीर व्यक्तियों के पास म्ररवों-खरवों की सम्पत्ति होती है, तो वे उसका संचय न करके सदैव उपभोग करते हैं। इसके विपरीत कृपण लोग केवल संचय करते है, किन्तु म्रन्त समय में राई के बराबर भी वह सम्पत्ति उनके साथ नहीं जाती। राजस्थानी में कहावत है--

दातार किरतार रै जोड़ रो है।

सत राख्यो सामूत, सोनगरै जगदे करण।
सारी वातां सूत, रंगी सत सूं राजिया ।। 125 ।।

वीरमदे सोनगरा (जालोर का), जगदेव पंवार (धारानगरी का) म्रोर राजा कर्ण ने सत्य को पूर्णत: धारण किये रखा। सत्य पर म्रडिग रहने से ही उनकी सारी बातें सुचारु रूप से बनी रह गई।

कनवज दिली सकाज, ये सायंत परसंत ये ।
रळता देख्या राज, रयताण्यां वस राजिया ।। 126 ।।

कन्नौज और दिल्ली के जयचंद एवं पृथ्वीराज जैसे अधिपतियों के पास वे सामन्त और वे घोड़े थे, किन्तु स्त्रियों के कारण वे राज्य बरबाद होते देखे गये; अर्थात् विलासिता के प्रसंग किसी भी शासक के लिए घातक सिद्ध होते हैं ।

अदतारां घर आय, जे क्रोड़ां संपत जुड़ं ।
मौज देण मन मांय, रती न आवै राजिया ।। 127 ।।

यदि कृपण व्यक्तियों के पास करोड़ों की सम्पत्ति भी एकत्र हो जाय, तब भी उनके मन में रीझ करने की भावना रत्ती भर भी जाग्रत नहीं होगी ।

उण ही ठांम अरोग, भांजण री मन में भणै ।
आ तो वात अजोग, रांम न भावै राजिया ।। 128 ।।

मनुष्य जिस बर्तन में खाता है, यदि उसी को तोड़ने ‥ मन में विचारता है, तो यह सर्वथा अनुचित है और ‥ भी अच्छी नहीं लगेगी । (कृतघ्नता सब से बड़ा ‥ है ।)

अवसर मांय अकाज, सांमो बोल्यां सांपजे ।
कारणो जे मिध काज, रीस न कीजे राजिया ।। 129 ।।

कार्य सफल होने का अवसर आने पर यदि सामने वाले से तकरार हो गई, तो काम बिगड़ जाएगा। इसलिए यदि काम बनाना हो तो उसकी बात पर क्रोध प्रकट मत करो, उसे पचा लो।

मंस्ह्रा मिनख नजीक, उमरावां आदर नहीं ।
टाकर जिणनै ठीक, रण में पड़सी राजिया ।। 130 ।।

जो छोटे आदमियों (क्षुद्र विचार वालों) को सदैव अपने निकट रखता है और उमरावों (सुयोग्य और सक्षम व्यक्तियों) का जहां अनादर है, उस ठाकुर (प्रशासक) को रणभूमि (संकट की घडी) में पराजय का मुंह देखने पर ही अपनी भूल का पता चलेगा।

मांनै कर निज मीच, पर संपत देखे अपत ।
निपट दुखी रहै नीच, रीसां बळ बळ राजिया ।। 131 ।।

नीच प्रकृति का व्यक्ति किसी दूसरे की सम्पत्ति (सुख-वैभव) को अपनी मृत्यु के समान मानता है और इसीलिए वह उसे देखकर क्रोध से जल-जल कर नितान्त दुःखी रहता है।

तो पड़ता ज सुहार, मन सुभई दे दे सुणे ।
सूमां रै उर सार, रहै घणा दिन राजिया ।। 132 ।।

सुहार अपने अहरन पर हथौड़ों से प्रहार करते समय 'दे-दे' शब्द को 'भणत' बोलते हैं, किन्तु कृपण व्यक्तियों के हृदय में देने का उद्घोष करने वाली वह ध्वनि कई दिनों तक सालती रहती है ।

हुवै न बूझणहार, जांणै कुण कीमत जठै ।
विन ग्राहक व्योपार, रूळचो गिणीजै राजिया ।। 133 ।।

जहाँ किसी को कोई पूछने वाला भी नहीं मिलेगा तो वहाँ उसके गुण का महत्त्व कौन समझेगा । यह सच है कि बिना ग्राहक के व्यापार ठप्प हो जाता है । (गुण और गुण-ग्राहक दोनों से ही वस्तु की सार्थकता होती है ।)

तज मन सारो घात, इकतारी राखै इयक ।
वां मिनखां री वात, रांम निभावै राजिया ।। 134 ।।

जो लोग अपने मन से समस्त कुटिलताएँ त्याग कर सदैव एक-सा आत्मीय व्यवहार करते हैं, उन भले मनुष्यों की बात भगवान निभाता है ।

ळौ लाहोर, जींद भरतपुर जोयलं ।
ां ही में जोर, रिजक प्रमांणै राजिया ।। 135 ।।

पटियाला, लाहौर, जींद और भरतपुर को देख लीजिए, जहां जाटों में ही शक्ति है, क्योंकि ताकत का आधार रिज़्क होता है।

खग झड़ धाज्यां खेत, पग जिण पर पाछा पड़ै।
रजपूती में रेत, राळ नचीतो राजिया ।। 136 ।।

रणखेत में जब कृपाण-धाराएँ बजने लगे, उस समय कोई रण-विमुख हो जाय, तो ऐसी राजपूती में निश्चिन्त होकर रेत डालिए।

सत्रु सूं दिल स्याप, सैणां सूं दोखी सदा।
बेटा सारू बाप, राख घस्या क्यूं राजिया ।। 137 ।।

जो शत्रु से तो मित्रता और हितैषियों से द्वेष रखता है, ऐसे बेटे को जन्म देने के लिए बाप ने व्यर्थ ही क्यों कष्ट उठाया ?

गैला गिंडक गुलाम, बुचकारयां बाथां पड़ै।
कूट्यां देवै काम, रोस न कीजे राजिया ।। 138 ।।

पागल, कुत्ता और गुलाम ये तीनों पुचकारने से हावी होने लगते है। ये तो ताड़ने से ही काम देते हैं, इसमे क्रोध करना व्यर्थ है।

खोच मुफत रो खाय, फरड़ावण डूंकर करै ।
लपर घणो लपराय, रांड उचकतो राजिया ।। 139 ।।

जो मुफ्त का खीच खाकर अकड़ता हुआ डींगें हांकता है, ऐसा फरेबी और ढोंगी तो किसी स्त्री को बहका कर ले उड़ेगा ।

चावळ जितरी चोट, कोई अति सावळ कहै ।
खोटै मन रो खोट, रहै चिमकतो राजिया ।। 140 ।।

कोई व्यक्ति भले ही सहज भाव से क्यों न कहे, परन्तु हे राजिया ! दुष्ट के मन में छिपे हुए खोट पर यदि जरा-सी चोट पहुंचती है, तो वह चौंकने लगता है। (अपराधी मन सदैव आशंकित रहता है ।)

(त)
तूठा = तुष्ट, प्रसन्न
(द)
दुहेलौ—दुःसाध्य, कठिन
(ध)
धूंकळ = युद्ध, भिड़न्त
(न)
निखद = नीच, निकृष्ट
निपट = नितान्त
निहचै = निश्चय ही
नाडचां = तलाइयां
(प)
पखरैत = घोड़े
प्रमांणै = अनुसार
पळ = मांस
परवाण = परिमाण,
प्राक्रम = पराक्रम
प्रापत = प्राप्तव्य
पाहण = पाषाण, पत्थर
पुटिया = एक पक्षी
पूरवियौ = पूर्व दिशा का, रंगास्वामी
(ब)
बीना = कमी, शंका
बीज = द्वितीया
(म)
मगज = अहंकार
मलाण = म्लान, घटिया
माड़वा = मानव
मिणधर = मणिधर सर्प
मीच = मत्यु
... काम चेष्टा रहित स्त्री
है
मुक्ताफल, मोती

(र)
रजपूती = शौर्य, साहस
रदताण्यां = स्त्रियां
रसा = पृथ्वी
रहस = रहस्य, भेद
राळ = डालना, मिलान
रिगल = ठिठोली, मजाक
रिजक = रिज़्क
रीती = रिक्त, खाली
रीरायां = गिड़गिड़ाने से
रुगड = असभ्य, मूर्ख
रूनौ = रोया
रैणायर = रत्नाकर, सागर
रोढ़ = खच्चर
रोभा = कष्ट
रोर = दारिद्रय
रोही = जंगल
(ल)
लपर = लबाड़ी, लफंगा
लावां = लावा पक्षी
लासक = लोलुप, निकृष्ट
(व)
वारज = वारिज, कमल
विनांण = विन्यास, रचना
विडावणा—अरुचिकर
विजण = व्यंजन
विहंग = पक्षी
(स)
सूत = ढंग से, सही
(ह)
हगांम = ठाट, उत्सव
हलकारयां = ललकारने से
हांम = इच्छा